साहित्य

सूर्यमल्ल मिश्रण

विष्णुदत्त शर्मा

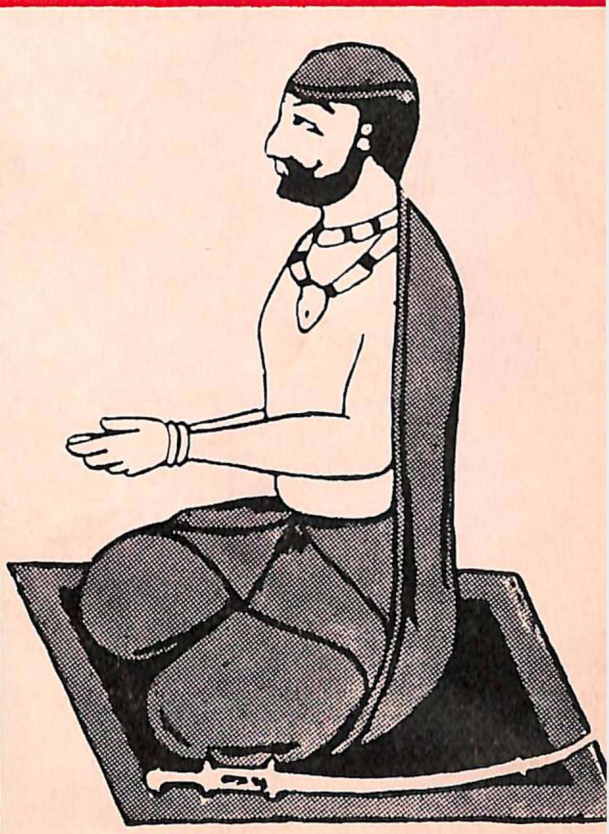

H
817.51
M 687 S

भारतीय

H
817.51
M687S

भारतीय साहित्य के निर्माता

सूर्यमल्ल मिश्रण

मूल अँग्रेजी तथा यह हिंदी अनुवाद
विष्णुदत्त शर्मा

साहित्य अकादेमी

Surya Mall Mishran : Hindi translation by Vishnu Dutt Sharma
of his English monograph on the distinguished Rajasthani Poet.
Sahitya Akademi, New Delhi, second edition (1982

SAHITYA AKADEMI
R REVISED PRICE Rs. 15.00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : १९७९
द्वितीय संस्करण : १९८२

H
817.51
M687S

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय :

रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली-११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय :

ब्लाक V-वी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता-७०००२९

२९, एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास-६०००१८

१७२, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-४०००१४

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

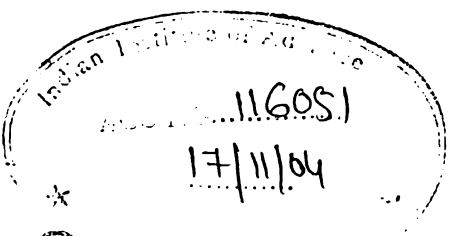

मुद्रक :
भारती प्रिण्टर्स,
दिल्ली-११००३२

क्रम

१. युग और परम्पराएँ ७
२. जिन्दगी और जीवन-चर्या के कुछ तथ्य १२
३. आवेग और अन्तर्प्रेरणाएँ १६
४. सूर्यमल्ल मिश्रण की साहित्यिक गरिमा २१
५. पूनर्विलोकन और प्रत्याशा ३७

अध्याय १

युग और परम्पराएँ

महान् उद्देश्यों के लिए संघर्ष करने वालों के शौर्य और वीरोचित गुणों का काव्यमय वर्णन विश्व-भर के कवियों और लेखकों की भावात्मक परंपरा है। पुरातन पश्चिम में इस महान् परंपरा के देदीप्यमान प्रतिनिधियों में कवि होमर हैं और पूर्व में महर्षि वेद व्यास। संसार के ज्ञात कवियों में से प्रथम, वाल्मीकि ने भी भगवान् श्री रामचन्द्र के वीर-चरित्र के वर्णन में लेखनी उठाई है। प्रसिद्ध महाकाव्य 'महाभारत' तो धर्म-युद्ध का ही कवित्वमय वर्णन है और इसमें मुख्यतः उस शौर्य का गान है जो धरती के सपूतों ने उस घातक किंतु रोमांचकारी रण-अभिनय में प्रदर्शित किया। समस्त भारतवर्ष में यह अति पुरातन काव्य-परंपरा सदैव अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही है। वीर-काव्य की यह पर्वत-निर्झरिणी प्राकृत और अपभ्रंश की घाटियों और कंदराओं से होती हुई हिन्दी में आई है। राजस्थान का डिंगल-काव्य इस प्रकार की कृतियों से, जिनमें मुख्य नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो' और चंद बरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' है, भरा पड़ा है। बाँकीदास आढादुरसा और पृथ्वीराज राठौड़ भी इस प्रकार के काव्य के लिए विख्यात हैं। मध्यकाल में यद्यपि काव्य का मुख्य विषय 'शृंगार' था तथापि भूषण-जैसे कवि हिन्दी-काव्य-धारा में वीर-काव्य की यशःपताका को बराबर फहराते रहे। पिछले खेवे के कवियों में से भगवानदीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और रामधारी सिंह दिनकर ने इस परंपरा को अपनी प्रतिभा से समृद्ध किया।

अपने-अपने युग की इन गौरवमयी स्मृतियों को भिन्न-भिन्न छंदों के सशक्त और आवेगपूर्ण प्रवाह के माध्यम से जीवित रखने वाले इन प्रतिभा-संपन्न कवियों को साधारणतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक श्रेणी में वे कवि आते हैं जिन्होंने नितांत रूप से अपनी ही अंतरात्मा की प्रेरणा से रचना की। वे समसामयिक घटना-क्रम का अनासक्त भाव से अवलोकन और अध्ययन और इस प्रकार के अवलोकन और अध्ययन से अपने भाव-प्रवण मानस में उदित होने वाली अनुभूतियों की सरस व्यंजना करते रहे। वाल्मीकि और व्यास को इस श्रेणी में

रखा जा सकता है। दूसरी श्रेणी में वे कवि आते हैं जिन्होंने हाथ में खड्ग लेकर स्वयं युद्धों में भाग लिया और अपनी सशक्त लेखनी से संबंधित घटना-क्रम का काव्यमय वर्णन किया। अपने काव्य-नायकों के सारे भाग्य-परिवर्तनों और उन पर पड़ने वाली आपत्तियों के वे भागीदार हुए, इस दूसरी श्रेणी में चंद वरदाई का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है।

ईसा की उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ से भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व प्रायः पूर्णतया जम चुका था। इस प्रभुत्व का जो दुष्प्रभाव देश पर पड़ा वह केवल आर्थिक या राजनीतिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक भी था। अंग्रेज़ों की सत्ता इस समय प्रायः सार्वभौम हो गई। ब्रिटिश प्रभाव से अलग रहने या उनके प्रभुत्व के सामने नत-मस्तक होने में आगा-पीछा करने का दुस्साहस प्रदर्शित करने वाली किसी भी सत्ता का दमन करने की शक्ति उन्हें प्राप्त हो गई। फलस्वरूप कुछ आत्माभिमानी अथवा प्रतिभासंपन्न अपवादों को छोड़कर प्रायः सारे देश ने विशेषतः राजपूताना के, जो अब राजस्थान कहलाता है, राज्यों ने ब्रिटिश की छत्र छाया में सुरक्षा प्राप्त की और इस बात को भुला दिया कि इस सुरक्षा को उन्हें अपनी आज़ादी के मोल ख़रीदना पड़ रहा है। ब्रिटिश प्रभुत्व से प्राप्त होने वाली इस छलनामयी छाया में ये राजा लोग सुख-निद्रा में सो गए।

किंतु उपरोक्त कथन उस समय के घटना-क्रम का संपूर्ण चित्र नहीं है। यद्यपि देश में सामान्यतः शांति व्याप्त हो गई और ऐसा नज़र आने लगा कि लोगों ने नई व्यवस्था को स्वीकार कर लिया है पर देश के किन्हीं कोनों में, खोई हुई आज़ादी को पुनः प्राप्त करने की आशा और आकांक्षा बराबर जीवित रही—इस आशा और आकांक्षा का मूल उन हृदयों में था जो देश के प्राचीन इतिहास की गौरव-मयी गाथा से अनुप्राणित थे।

बौद्धिक वर्ग में इस भावना का प्रभाव प्राचीन इतिहास के मनोयोगपूर्वक अध्ययन और नए घटना-क्रम के संदर्भ में उसकी व्याख्या के रूप में हुआ। भावना-मात्र से जिनको संतोष नहीं था वे स्वतंत्रता की शक्ति के गुप्त पुनर्गठन में तथा इस प्रयास में प्रवृत्त हुए कि आज़ादी की अधबुझी चिनगारियों को एकत्र करके उन्हें स्वतंत्रता की यज्ञाग्नि के रूप में प्रज्वलित किया जाए। राजस्थान में स्वतंत्रता के लिए बलिदान की पुरानी परंपराएँ थीं; अतः सक्रियता की इस संकल्पना को यहाँ उपयुक्त क्षेत्र मिला। राजपूताना के विभिन्न राजदरबारों में चारण-वर्ग के योद्धा कवि रहा करते थे जो इस भावना से विशेषतः अनुप्राणित हुए।

बाहरी दुनिया में इन चारणों की वास्तविक भूमिका के बारे में कुछ ग़लत-फ़हमी है और इनको कभी भाटों के, जो एक दूसरा वर्ग है, समानार्थक समझ लिया जाता है। राजदरबारों में भाटों की भी किसी क़दर पूछ थी; क्योंकि इनका वर्ग चलते-फिरते लोक-कवियों का था जो अपने दान-दाताओं अथवा दान-कृपणों के

यश-अपयश की कहानियाँ देश के विभिन्न भागों में सुनाते फिरते थे। चारण इनसे भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक मानी और विशिष्ट वर्ग के थे। इन लोगों को राज-दरबारों में बड़े आदर से सम्मानित किया जाता था। महत्वपूर्ण घटनाओं के दर्शक और सहयोगी, इतिहास के रक्षक, आनंद के क्षणों के मित्र और युद्ध के सहगामियों के रूप में इनकी बड़ी क़दर थी। समय पड़ने पर ये लोग राजाओं को अपने कठिन कर्तव्य का स्मरण कराते थे और इस बात की ख़बर रखते थे कि उनसे अपनी समय-सिद्ध परंपराओं और वंश-गौरव के प्रतिकूल काम न होने पाएँ। यदि किसी की ओर से कर्तव्य-स्खलन की स्थिति आती थी तो ऐसे लोगों को इन कवि-सहयोगियों की फटकार का सामना करना पड़ता था। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है कि ये चारण लोग अपने आश्रयदाताओं को उपयुक्त समय पर सामयिक-सलाह और चेतावनियाँ इस ख़ातिर देते थे कि संबंधित राजवंशों का यश और मर्यादा अक्षुण्ण रहे।

सूर्यमल्ल मीसण और केसरी सिंह इसी चारण वंश के लोग थे। सूर्यमल्ल ने अपने गीतों और दोहों के माध्यम से क्षत्रियों की अनेक पीढ़ियों को अनुप्राणित किया है और बारहट केसरीसिंह ने अपने 'चेतावणी का चूँगट्या' संज्ञक सोरठों के माध्यम से मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह को कर्जन के दिल्ली दरबार में हाज़िरी देने से रोक दिया, यह बात विख्यात ही है।

ज्ञात इतिहास के अनुसार, जिसे सूर्यमल्ल ने अपने स्मरणीय ग्रंथ 'वंश-भास्कर' में स्वयं दोहराया है, कवि के वंश के आदि-पुरुष चंड-कोटि थे जिनके लिए विख्यात है कि वे षड्भाषाविद् थे तथा उन्होंने विद्वानों की एक महती सभा में शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की थी। वे इस सभा में बारी-बारी से छः भाषाओं में बोले। सभा में एकत्रित विद्वानों ने उनके बहुभाषा-ज्ञान को मान्यता प्रदान करते हुए 'मिश्रण' की उपाधि प्रदान की। तभी से 'मिश्रण या मीसण' की उपाधि इस परिवार की स्थायी निधि हो गई।

परिवार मूलतः मेवाड़ राज्य के एक गाँव में रहता था। कवि के प्रतिभा-संपन्न पूर्वजों में भाणा नाम के एक चारण सरदार थे जिनका चित्तौड़गढ़ दरबार में भी बड़ा मान था और तत्कालीन बूँदी नरेश राव सूर्यमल्ल के यहाँ भी आव-जाव तथा संपर्क था। भाणा के मन में राव सूर्यमल्ल के साहस, शौर्य, और गहन विद्वत्ता के प्रति बड़ा सम्मान था। एक बार जबकि भाणा, राव सूर्यमल्ल के अतिथि थे, दोनों साथ-साथ शिकार पर गए जहाँ राव सूर्यमल्ल ने दो वन्य सुअरों को अपनी कटार से मारा। भाणा, राव सूर्यमल्ल की शक्ति के इस परिचय से प्रसन्न हुए और उन्होंने काव्य में इस साहसिक घटना का वर्णन किया। राव सूर्य-मल्ल ने भी भाणा को हाथी, घोड़ा व विपुल धन देकर सम्मानित किया और कई महीनों तक भाणा को आग्रह के साथ अपना मेहमान रखा। चित्तौड़गढ़ लौटने पर

उन्होंने चित्तौड़गढ़ के महाराणा रतनसिंह से राव सूर्यमल्ल की वीरता और उदारता का ज़िक्र किया। महाराणा को इससे अप्रसन्नता हुई और उन्होंने भाणा से कहा, 'राव सूर्यमल्ल ऐसे हैं तो उन्हीं के यहाँ जाकर रहो।' भाणा को यह बात लग गई और वे बूंदी चले गए। बूंदी के राव सूर्यमल्ल ने उनका, स्नेह और सत्कार के साथ स्वागत किया और जागीर और बहुत-से क़ीमती उपहार प्रदान किए—तब से भाणा ने बूंदी को ही अपना घर बना लिया। यह नगर तब मीसण-परिवार का स्थायी निवास-स्थान हो गया। कवि सूर्यमल्ल के पिता चंडीदान भाणा से दसवीं पीढ़ी में थे।

चंडीदान का समय ईसा की १८वीं सदी के अंत और १९वीं सदी के प्रारंभ का है। उन्होंने भारत में ब्रिटिश सत्ता के प्रसार को अपनी आँखों से देखा था। कई गीतों में उन्होंने ब्रिटिश सत्ता से लड़ने वाले भारतीयों के शौर्य की कहानी कही है। इनमें कुछ के उद्धरण आगे दिए जाते हैं :

"अंगरेज़ कहै मत भरै उलाला तोड़न गढ़ ताला तरजूत
अब तो मान बहादुर बाला रै औगण गारा राजपूत"
"इम बोलै तोलै खग आछाँ अण बोलै चहुआण जनै
अंगरेज़ाँ धड़-सीस उतारूँ मारूँ जद आलगै मनै"

'अंगरेज़ कहता है कि हे तलवार के धनी, गढो के भंजक, उपद्रवी बहादुर राजपूत, बहुत उछलै मत, अब तो मान जा!'

'अपनी तलवार को भली प्रकार तोलकर चौहान कहता है अंगरेज़ के धड़ पर से सिर उतारूँ तभी मेरा मन प्रसन्न हो।'

ऐसी उग्र काव्य-प्रकृति के धनी परिवार में संवत् १८७२ (ईस्वी सन् १८१५ के समकक्ष) में राजस्थान के एक राज्य की राजधानी बूंदी नगर में, जो आकार में छोटा, पर परंपरा में महान् रहा है, कवि सूर्यमल्ल का जन्म हुआ। पिता चंडीदान बूंदी के महाराव रामसिंह के दरबारी कवि थे—उनकी मृत्यु के बाद स्वयं सूर्यमल्ल उस पद पर प्रतिष्ठित हुए।

दरबारी कवियों, विशेषत: मध्यकालीन दरबारी कवियों, के विषय में बहुत से भ्रामक विचार लोक-विख्यात हैं। साधारणत: ऐसा समझा जाता है कि ये दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण और असत्य प्रशंसा में लगे रहते थे अथवा शृंगारपूर्ण रचनाओं द्वारा उनके विलासपूर्ण प्रमादी क्षणों को अनुरंजित करने का प्रयत्न किया करते थे। यह ख़याल सत्य के सर्वथा विपरीत भी नहीं है। पर इन्हीं रजवाड़ों में सच्ची प्रतिभा के ऐसे कवि भी थे जिन्होंने अपने आश्रयदाताओं की चाटुकारी में नहीं लिखा बल्कि ऐसे आश्रयदाताओं से सम्मान-पूर्ण आश्रय पाते हुए सम-सामयिक ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डाला और

वीर योद्धाओं की काव्यमय प्रशस्तियाँ लिखीं। इसी परंपरा में विद्यापति-जैसे कवि भी हुए जिन्होंने प्रणय और सौंदर्य के ऐसे गीत लिखे कि जो कालान्तर से देश में विख्यात होकर निष्ठा और भक्ति के गीत बने। सूर्यमल्ल मिश्रण और राजपूताना के उन-जैसे दूसरे कवि उस वर्ग में हुए कि जिन्होंने ऐतिहासिक वीरत्व को संगीतमय अभिव्यक्ति प्रदान की। यदि उन्होंने कभी शृंगार के क्षेत्र में प्रवेश भी किया तो वीरों और वीरांगनाओं के प्रणय का चित्रांकन करने के लिए कि जिन्होंने शांति के समय प्रणय के खेल खेले पर कर्तव्य के आह्वान पर विना हिचकिचाहट के उन अवरोधों को तृण की तरह तोड़ डाला।

अपनी महत्त्वपूर्ण और महान् कृति 'वंश भास्कर' में, जो आकार में 'महाभारत' के समान है, सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपने आश्रयदाता राव राजा रामसिंह के विषय में वहुत कम लिखा है और जन-श्रुति है कि राव राजा रामसिंह ने जव उनसे इस वात की अपेक्षा की कि उनके विषय में कुछ कटु सत्यों को लेखवद्ध न किया जाए तो सूर्यमल्ल मिश्रण ने 'वंश भास्कर' का लेखन ही वंद कर दिया।

युद्ध-कला, ज्योतिष, योग, धर्म, अध्यात्म और अन्य अनेकानेक पुरातन विज्ञानों के विषय में 'वंश भास्कर' ज्ञान और सूचना की खान ही है। चौहानों के इतिहास का इसमें विस्तार सहित वर्णन है पर महाराव रामसिंह को कहीं इसमें असाधारण मुख्यता नहीं दी गई है। कवि की दूसरी कृति 'वीर सतसई' में तो ज़रा भी व्यक्तिनिष्ठ नहीं है—भारतीय योद्धा-वर्ग की भावनाओं, आकांक्षाओं और संकल्पनाओं का भावपूर्ण और समर्थ वर्णन है और वीरों और वीरांगनाओं की आशाओं और आकांक्षाओं के अभिभूत करने वाले शब्द-चित्र हैं। इसमें उन महान् योद्धाओं के दिल और दिमाग़ की तसवीर है जिन्होंने अवरोध और मृत्यु के ख़तरनाक खेलों में आह्लाद के साथ बढ़कर हिस्सा लिया और जिन्होंने रणांगण की मृत्यु को ग़ुलामी और अपमान के जीवन की तुलना में वरणीय समझा।

यह वात आश्चर्यजनक है कि ग़ुलामी की वर्द्धमान स्वीकृति के इस युग में सूर्यमल्ल में, युद्ध और योद्धाओं के विषय में इस उग्रता के साथ लिखने की प्रवृत्ति विकसित हुई।

उनके परिवार में अखंड आत्म-सम्मान और देश-भक्ति की ज़रूर एक अविच्छिन्न परंपरा थी। इस वंश-परंपरा के अतिरिक्त समसामयिक इतिहास में भी ऐसे तथ्य विद्यमान थे कि जिन्होंने राजस्थान के इस वीर-पुत्र की मानसिकता के निर्माण में सहायता की।

अध्याय २

जिन्दगी और जीवन-चर्या के कुछ तथ्य

यह बात पहले कही जा चुकी है कि सूर्यमल्ल मिश्रण की वंश-परंपरा कवि चंडकोटि से जुड़ी हुई है जिन्होंने छः भाषाओं पर अधिकार प्रदर्शित कर 'मिश्रण' की उपाधि अर्जित की थी। चंडकोटि स्वयं, और भाणा सहित उनके सब उत्तराधिकारी कवि-कर्म-कुशल थे। इनमें से भाणा ने बूंदी नगर को सर्वप्रथम अपना निवास-स्थान बनाया था। इस वंश में 'बदन', जो बृज-भाषा के कवि रूप में विख्यात हुए, सूर्यमल्ल मिश्रण के पिता चंडीदान, और स्वयं सूर्यमल्ल मिश्रण, ईसा की १८वीं व १९वीं शताब्दी के पूर्वांश में हुए।

चंडीदान 'पिंगल' और 'डिंगल' दोनों के ख्यातनामा कवि थे और एक शब्द-कोश तथा दो काव्य-ग्रंथ लिखने का श्रेय उन्हें प्राप्त है। सूर्यमल्ल मिश्रण की शिक्षा किसी पाठशाला में नहीं हुई क्योंकि उस समय कोई व्यवस्थित शाला-परंपरा नहीं थी किंतु कई गुरुओं से जिनमें दादूपंथी साधु स्वरूपदासजी महाराज, पिता चंडीदास, विद्वान् पंडित आशानन्द मुख्य हैं, संस्कृत, दर्शन-शास्त्र, इतिहास और काव्य-शास्त्र में उन्हें शिक्षा मिली थी। 'वंश भास्कर' में सूर्यमल्ल मिश्रण ने इन सब गुरुओं के प्रति सम्मानपूर्ण आभार प्रकट किया है। मोहम्मद नामक एक मुस्लिम संत से उन्होंने इस्लामी संस्कृति और इस्लाम-धर्म का भी ज्ञान प्राप्त किया। इस मुस्लिम संत को 'वंश भास्कर' में उन्होंने निम्न शब्दों में याद किया है :

संतोषादिगुणैः पूर्ण पूजिताल्लाह पदद्वयम्
इंडे मुहम्मदाभिख्यं यावन्यध्यापकं मम

(संतोषादि गुणों से पूर्ण—अल्लाह के उपासक मोहम्मद नाम से विख्यात—मेरे अन्य गुरु हैं।)

उन्होंने 'वंश भास्कर' में इस बात का भी ज़िक्र किया है कि एक दूसरे मुस्लिम गुरु से उन्होंने वीणा-वादन और संगीत का ज्ञान प्राप्त किया। इन मुख्य गुरुओं के अतिरिक्त उन्होंने अन्य कई गुरुओं का यह कहकर वर्णन किया है कि

इन्हीं गुरुओं ने इनको अज्ञान के अंधकार से निकालकर विद्वत्ता और ज्ञान के प्रकाश में पहुँचाया।

मिश्रण की पहली काव्य-कृति का नाम है 'रामरंजाट'। इसमें राव राजा रामसिंह के राजसी वैभव और दशहरा, गौरी-पूजन आदि त्योहारों का वर्णन है। कहा जाता है कि जिस समय यह पुस्तक लिखी गई उस समय कवि की आयु मात्र दस वर्ष थी। यद्यपि इस प्रारंभिक कृति में भी सूर्यमल्ल की जन्म-जात प्रतिभा के चिह्न मौजूद हैं पर विचार काव्य के रूप में इसे ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता। वाद के जीवन में ही सूर्यमल्ल ने परंपरागत चारण-काव्य के गहन अध्ययन से प्रेरणा ग्रहण की और इसके भी वाद तत्कालीन घटना-क्रम के अनुभव से अपनी प्रतिभा को समृद्ध किया। आयु वढ़ने के साथ-साथ ही उनका अदम्य व्यक्तित्व निखरता गया और उनके मानसिक क्षितिज में ऐसी प्रकाश-किरणें उद्भासित हुईं कि जो वाह्यतः एक-दूसरे के प्रतिकूल रंगों की प्रतीत होती थीं किंतु जिनमें एक आंतरिक साम्य था। शौर्य के प्रति निष्ठा उनके इस मानसिक साम्य का आधार थी।

अपने मालिक महाराव रामसिंह के प्रति उनकी एकनिष्ठ भक्ति और उनके चरित्र और महत्त्व के प्रति मन में बड़ा सम्मान था परंतु किंवदन्ती यह है कि महाराव रामसिंह की एक चहेती महारानी ने पूजा के समय सूर्यमल्ल को यह प्रार्थना करते सुना कि "हे प्रभु? कभी ऐसा पुण्य-दिवस आए कि मेरे शूर-वीर मालिक का सिर युद्ध-भूमि में घोड़ों की टापों से टकराता फिरे।" महारानी तो कवि की इस अभिलापा को सुनकर सन्न रह गई और इससे उनको अत्यन्त क्रोध भी हुआ। उन्होंने पूछा, "मेरे पति जैसे स्नेही और शील-सम्पन्न मालिक के लिए हे कविराज! तुम यह कैसी प्रार्थना करते हो?" कवि की ओर से तत्पर उत्तर मिला, "ऐसे वहादुर सुपात्र धणी और वीर क्षत्रिय के लिए मैं इससे अधिक किस सौभाग्य की कामना कर सकता हूँ।"

महाराव रामसिंह एक वार एक विद्वान् से महाभारत की कथा सुन रहे थे। इस रोमांचकारी कथा को सुनकर महाराव को खयाल हुआ कि महाभारत संस्कृत में लिखी हुई है इसलिए यह जन-साधारण की समझ के वाहर है। क्यों न चौहान-क्षत्रिय वंश की कहानी इसी दिव्य रूप में लोक-भापा में लिखी जाए कि जन-साधारण के भी समझ में आ सके। उन्होंने अपनी इच्छा अपने दरवारी-कवि सूर्यमल्ल से प्रकट की और कवि इस गुरु-भार को ग्रहण करने को तैयार हो गए। उनकी एक ही शर्त थी कि उन्हें सत्य के उद्घाटन की पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए, चाहे ऐसा करने में उन्हें महाराव रामसिंह और उनके पूर्वजों के विषय में कोई कटु अथवा अवमाननापूर्ण बात ही क्यों न लिखनी पड़े। महाराव ने यह शर्त मंजूर की और काम शुरू हो गया। इस बात का लेख मिलता है कि काव्य-रचना का वेग

इतना प्रखर था कि कवि के साथ चार लेखकों को आवद्ध किया गया था कि वे एक के वाद एक उनकी रचना का आलेखन करते रहें। आवेग के क्षणों में प्रतीत होने लगता था कि देवी सरस्वती उन पर छा गई हैं और उनके मुख से काव्य-धारा पर्वतीय निर्झर से फूटने वाली दुर्निवार जल-धारा की भाँति इतने वेग से प्रवाहित होती थी कि चारों लेखक अत्यन्त परिश्रम पूर्वक ही उसको लेख-वद्ध कर पाते थे।

यदा-कदा जव वे काम करते-करते थकान का अनुभव करते तो गृह-द्वार के वाहर के ऊँचे इमली-वृक्ष से लटके हुए झूले पर अपना सितार लेकर जा वैठते थे और संगीत के नशे में घंटों डूवे रहते थे। उनका संगीत-प्रेम अद्‌भुत था। एक वार वूंदी दरवार में आई हुई एक सुन्दरी नृत्यांगना के संगीत पर वे इतने विमुग्ध हो गए कि महाराव रामसिंह को यह शंका होने लगी कि इस सुन्दरी के प्रति कवि की यह मुग्धावस्था कहीं उनके 'वंश भास्कर' प्रणयन में वाधक न हो जाए। अतः महाराव ने उचित पुरस्कार देकर इस महिला को रवाना कर दिया। जव यह वात सूर्यमल्ल मिश्रण की जानकारी में आई तो वे आग-ववूला हो उठे और खुद अपने मालिक को चुनौती दे डाली, "महाराव जी, अव 'वंश भास्कर' लिखने के लिए किसी और को ढूंढ़ लो—अव सूर्यमल्ल 'वंश-भास्कर' नहीं लिखेगा।" महाराव, कवि की उग्र किन्तु चंचल प्रकृति से परिचित थे और उनको विश्वास था कि कवि का उनके प्रति स्नेह, उनके इस क्रोध को शान्त कर देगा। अतः कवि के क्रोध को उन्होंने सहजता और धैर्य के साथ सहन किया और कवि से सारी घटना पर पुनर्विचार करने का विनयपूर्ण आग्रह किया। फलस्वरूप कवि का क्रोध कुछ समय पश्चात् शान्त हो गया और 'वंश-भास्कर' का लेखन-कार्य फिर शुरू हो गया। आगे चलकर जव कवि, 'वंश-भास्कर' में स्वयं महाराव रामसिंह का जीवन-वृत्त लिखने लगे तव महाराव को (संभवतः लेखकों से) मालूम हुआ कि कवि अपनी सत्यनिष्ठा के कारण महाराव रामसिंह के जीवन के किन्हीं कुख्यात पक्षों के यथातथ्य लेखन पर भी आग्रही हैं तो महाराव असहिष्णु होकर कह उठे, "मेरी वुराई लिखकर दुनिया के सामने उजागर करने से तो अच्छा है कि ग्रंथ ही न लिखा जाए।" कवि ने सत्य लेखन के प्रति अपने आग्रह को किसी भी क़ीमत पर छोड़ने से इंकार किया और 'वंश-भास्कर' का लेखन वंद हो गया। यह महा ग्रंथ तव सदैव के लिए अधूरा ही रह गया।

संगीत के प्रति कवि के व्यामोह की एक दूसरी विस्मयकारी घटना भी है। कवि की पत्नी का देहान्त हुआ और उसकी अरथी श्मशान-भूमि की ओर शव-यात्रा के रूप में ले जाई जा रही थी। कवि सूर्यमल्ल शव-यात्रा के साथ थे ही। मार्ग में वहादुरजी नामक कलावंत हाथ में तंवूरा लिये हुए मिल गया। कवि ने उससे भी शव-यात्रा के साथ चलने को कहा। कलावंत ने चाहा कि तंवूरे को घर

छोड़ आए और तब शव-यात्रा के साथ चले पर कवि ने आग्रह किया कि तंवूरा भी साथ ही चले। वहादुरजी साथ हो गया। शव, चिता में अग्नि-संस्कार के लिए रखा जाने को ही था कि कवि ने वहादुरजी से कहा, "एक विदा-गीत गाओ।" वहादुरजी संकुचित हुआ। यह भी गीत गाने का कोई वक़्त है। उसको सकुचाते देख कवि ने उसके हाथों से तंवूरा लिया और गाने लगे : 'लाडी जी घूंघटडो खोलो म्हाने मुख देखण को चाव छै,' (हे प्रिये, अपना घूंघट खोलो मुझे तुम्हारे मुख-चन्द्र के दर्शन की लालसा है।)

चिता के पार्श्व में संगीत तरंगित होता रहा और घंटों वीत गए। और विरही-प्रणयी के संगीत-स्वप्न को तोड़ने का साहस किसी को नहीं हुआ। जब साँझ ढल गई तो कवि के छोटे भाई जयलाल ने कठिनाई से कवि को समाधि-विरत किया और देह का अग्नि-संस्कार हुआ।

कवि को मद्यपान का व्यसन था यद्यपि इतना नहीं कि 'मद्यप' कहा जा सके। मद्य के हल्के नशे में ही उन्हें काव्य-रचना की स्फूर्ति हुआ करती थी। अच्छे मद्य के वे इतने शौकीन थे कि उनके मित्र और प्रशंसक बढ़िया-से-बढ़िया मदिरा के उपहार उनके पास भेजा करते थे। इस प्रकार के उपहारों की प्राप्ति की स्वीकृतियों को उन्होंने कविता के रूप में प्रकट किया है। अपने परम मित्र भिनाय (अजमेर के पास का एक क्षेत्र) के राजा वलवन्तसिंह के पास से जब उन्हें मदिरा का एक ऐसा उपहार प्राप्त हुआ तो उन्होंने निम्नलिखित कविता द्वारा उसकी प्राप्ति स्वीकार की :

मोद करि ऐसो मधु मधुर पठायो भूप
छायो वैठ केतकी गुलाब सुम छाजे पै
स्वाद पुनि सरस सुधाहू तें सुहायो सूम
लाखन के लखत नमायो वैन लाजे पै
ज्यों-ज्यों रविमल्ल को नजीक नियरायो गेह
त्यों-त्यों होय मोहित सुगंध सुख ताजे पै
आयो जानि आसव हमारे वलवन्त आए
भैरव भवानी दौरि-दौरि दरवाजे पै

'हे मित्र, आपने मेरे लिए जो मदिरा भेजी है वह इतनी मधुर और सुगंधित है कि मैं अपने चारों ओर अमृत की मधुरता और गुलाब की सुगंध बिखरी हुई पाता हूँ। यह समाचार पाकर कि आपने मेरे लिए मदिरा भेजी है, भैरव और भवानी दौड़-दौड़कर मेरे द्वार पर आ पहुँचे हैं।'

अध्याय ३

आवेग और अंतर्प्रेरणाएँ

सूर्यमल्ल मिश्रण के जीवन-काल में आर्थिक और सामाजिक पुनरुत्थान की आज-जैसी संकल्पनाएँ और आयोजनाएँ नहीं थीं। देश की स्वतंत्रता के पूर्व तक इन विषयों पर दृष्टिकोण स्पष्ट न था। विदेशी दासता से मुक्ति ही उस समय की सर्वोच्च भावना और दुर्दमनीय आकांक्षा थी। ब्रिटिश सत्ता की कठोरताओं को सूर्यमल्ल मिश्रण ने खुद अपनी आँखों से देखा था और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना चाहने वाली शक्तियों के साथ उनकी सहानुभूति थी। देशभक्तों के प्रति आत्मीयता के अतिरिक्त अपनी चारणी पृष्ठभूमि और काव्य-परंपरा ने भी राज-पूत-शौर्य के प्रति सूर्यमल्ल के मुग्ध भाव को पुष्ट किया। यही कारण है कि सूर्यमल्ल की देश-प्रेम-संबंधी संकल्पना पर राजपूत के परंपरागत धरती-प्रेम की भावना का भी गहरा पुट है। धरती के प्रति इस परंपरागत राजपूती प्रेम और मातृभूमि के प्रति निष्ठा इन दोनों भावनाओं का समन्वय इनके निम्नलिखित दोहे में स्पष्ट लक्षित है।

"इला न देणी आपणी हालरिए हुलराय
पूत सिखावै पालणै मरण वडाई माय"

"माता अपने पुत्र को पालने में झुलाते हुए लोरी गाकर कहती है, हे पुत्र! अपनी धरती की रक्षा के लिए मर जाने में ही वीर का महत्त्व है।"

किंतु यह सिद्ध करने के लिए प्रचुर साक्ष्य है कि ऐतिहासिक-भूतकाल की गौरव-गाथा, वर्तमान स्वतंत्रता-संघर्ष की ओर लोगों को गुप्त प्रेरणा देने के लिए एक आवरण मात्र थी।

अतः सूर्यमल्ल के काव्य में अंतर्हित भावधारा को उन गुप्त पत्रों के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि जो उन्होंने सहयोगी देशभक्तों और समान-धर्मा मित्रों को लिखे थे। जिस समय सन् १८५७ ईस्वी में भारतीय इतिहास की वह महान् घटना, जिसे ब्रिटिश इतिहासकार 'सिपाही विद्रोह' और भारतीय

'स्वतंत्रता के प्रथम युद्ध' की संज्ञा देते हैं, घटित हुई, उस समय सूर्यमल्ल की आयु ४२ वर्ष थी।

इस संघर्ष की आधारभूत प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए मौलाना अबुल कलाम आज़ाद श्री सुरेन्द्रनाथ सेन की प्रसिद्ध पुस्तक 'अट्ठारह सौ सत्तावन' की भूमिका में लिखते हैं :

"१८५७ की घटनाओं पर लिखे हुए विविध वर्णनों पर विचार करने के पश्चात् कुछ निष्कर्ष निःसंशय रूप से निकलते हैं। स्वभावतः प्रश्न उठता है कि क्या राष्ट्रीय भावना का विस्फोट इस विप्लव का एक-मात्र कारण था। यदि राष्ट्रीयता को इसके वर्तमान अर्थ में समझा जाए तो इस प्रश्न का उत्तर, पूर्ण 'हाँ' में नहीं हो सकता। इसमें संदेह नहीं कि देश-प्रेम की भावना भी विप्लवकारियों को प्रेरित करने वाली शक्तियों में से एक थी, पर मात्र यह भावना उस समय इतनी समर्थ नहीं थी कि विप्लव का रूप धारण कर लेती। उस समय प्रजा को विद्रोह के लिए खड़ा करने के लिए देश-प्रेम के साथ उनकी धार्मिक भावनाओं को भी उत्तेजित करने की ज़रूरत पड़ी थी। चर्बी लगे कारतूस की बाबत प्रचार इसका एक उदाहरण है। सिपाहियों को अपने विदेशी मालिकों के खिलाफ़ खड़ा करने के लिए अन्यान्य उपायों से भी उनकी धार्मिक भावनाओं को उत्तेजित करना आवश्यक प्रतीत हुआ था।"

और ब्रिटिश राज के प्रति असंतोष के इसी ईंधन-पुंज को चिनगारी दिखाने के लिए सूर्यमल्ल ने भूतकाल के महत्व और परंपरागत धरती-प्रेम का आह्वान किया।

सूर्यमल्ल ने इस महान् विप्लव की प्रगति को एक ऐसे सहृदय दर्शक की दृष्टि से, जिसे इसकी संभावनाओं और नियति के प्रति पूर्ण आस्था हो और जिसे इसकी सफलता की पूरी आशा हो, हृदयंगम किया।

कवि एक ऐसे राजा के दरबारी कवि थे कि जिसने ब्रिटिश सत्ता को आत्म-समर्पण और उसकी सुरक्षा को स्वीकार किया था। अतः विप्लव में खुल्लमखुल्ला शामिल होना उनके लिए संभव नहीं था पर उन्होंने अपने अभिन्न मित्रों को जो कई गोपनीय पत्र लिखे उनसे विप्लव के प्रति उनकी भावना स्पष्ट है। इन्हीं पत्रों से देश को गुलाम बनाने वाली ब्रिटिश शक्ति के प्रति और अपने उन देशवासियों, विशेषतः राजपूतों, के प्रति जिन्होंने देश को भुलाकर अंगरेज़ों के पाँवोंतले शरण ली थी, घृणा पूर्णतः लक्षित है।

पीपलिया के ठाकुर फूलसिंह को भेजे गए एक पत्र में उन्होंने लिखा :

"अर ये राजा लोग देशपती जमी का ठाकुर छै जे सारा ही हिमालय का

गल्या ही नीसरया सो चालीस सूं लेर साठ-सत्तर बरस ताई पाछे पटक्या छै तो भी—गुलामी करे छै परंतु यो म्हारो वचन राज याद राखोगा कि जै अवकै इंगरेज़ रह्यो तो ई को गायो ही पूरो करसी, जमी को ठाकर कोई भी न रहसी सब ईसाई हो जासी तीसै दूरन्देसी विचारै तो फायदो कोई कै भी नहीं परन्तु आपणो आछो दिन होय तो विचारै और राज जस्यो सुहृत म्हारे होय तो वड़ाई तरीकै लिखी जावै तीसूं थोड़ी में वहुत जाण लेसी।"

वख्तावरसिंह को भेजे गए एक पत्र में उन्होंने विद्रोह के पश्चात् अँगरेज़ों द्वारा किये हुए अत्याचार की निम्नलिखित शब्दों में भर्त्सना की :

"चैत्र के महीने इंगरेज़ की फ़ौज ने आइ लड़ाई करी—चौथे दिन फिरंट फ़ौज तो कटि गई अर इंगरेज़ ने कोटो सब तरह लूटि खराव कियो वहुत के पासी दी वहुत वंदूकाँ सूं मारया वहुत स्त्रियाँ की इज़्ज़त ली वहुत तौपाँ फोड़ि नाखी वहुत रुपया लेर पाछो महाराव जी को कोटो दे गया।"

एक इतने ही घनिष्ठ मित्र को भेजे गए पत्र में उन्होंने लिखा :

"धर मांही सूं कढिवों तो अव ताँई हो जातो परन्तु श्री परमेश्वर ने समय और ही कर दिया तीसो रजपूताँ में रजपूती कठै-कठै लाधै सो देख्याँ सूं तथा सुण्याँ सूं मन के आनंद आजावा को व्यसन छै और वठै ही रजपूती ऊघड़गी तथा वूड़ी ही दीसैगी तो जसी खुसी-वेखुसी हासिल हुआ कढ़िवो हो सी। लोभ अनैक तरै का होई छै याँ में ही रजपूत की रजपूतीं देख वा को लोभ छै सो अठी की तरफ़ ज्यादा असर करैछे अर साथी भी वहुत ही मिल जाता सुणै छाँ पर हिन्दुस्तान को दिन आछ्यो नहीं तीसों आपस में एकता करै नहीं।"

उपरोक्त उदाहरणों से कवि की मानसिकता की झलक मिलती है। इनसे उन परिस्थितियों का भी ज्ञान होता है कि जिनके कारण उन्हें राजपूतों की सुपुप्त युद्ध-प्रियता और साहस को एक ऐसे उद्देश्य के लिए जगाने की प्रेरणा हुई कि जो उनके अव तक के युद्ध-लक्ष्यों से कहीं अधिक महान् था। सूर्यमल्ल वास्तव में एक कवि और विचारक थे, योद्धा नहीं। इसलिए उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा के आयुध का इस चतुराई से प्रयोग किया कि अँग्रेज़ों की दृष्टि में या उनके रक्षित राजघरानों की दृष्टि में तो वे संदिग्ध नहीं वने पर उनका संदेश देशभक्तों के संवंधित वर्गों के पास पहुँच गया। मध्यकाल की युद्ध-कला का उन्होंने जो वर्णन किया है वह अति सजीव और चित्रमय है और किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसे उस जीवन के प्रति पूर्ण निष्ठा न हो, ऐसा सटीक वर्णन किया नहीं जा सकता। किन्तु सूर्यमल्ल के अपने समय में युद्ध के तौर-तरीक़े मध्य-काल के मुक़ावले में वहुत बदल गए थे। यदि ज़माना पहले-जैसा होता तो सूर्यमल्ल संभवतः हाथ में तलवार लेकर फ़ौज की हरावल में होते। पाठक को यह दिखाने के लिए कि सूर्यमल्ल का

भाषा और सटीक शब्द-चित्रण पर कैसा व्यापक अधिकार है, 'वंश-भास्कर' के युद्ध-वर्णन में से कुछ शब्द-चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं :

"विशिखन पर प्रति-विशिख त्रिशिख छुट्टत त्रिशिखन पर
संगिन ऊपर संगि कुन्त पर कुन्त भयंकर
गदा-गदा रुख चलत खग्ग वुल्लत झरि खग्गन
मुक्तादिक आयुधन मचत इम वार समग्गन
छक-छकत छाप शोणित छलत चलत राह रवि रथ थकिय
परिहार राज इत उत प्रवल धूम-ध्वज जुझ्झन धकिय।"

"तीर के प्रत्युत्तर में तीर, त्रिशूल के उत्तर में त्रिशूल, साँग पर साँग और कुन्त पर कुन्त चलते हैं, गदा गदा की ओर चलती है और तलवारों से आग वरसती है मुक्तादिक आयुधों से वार पर वार होते हैं। रक्त के नाले वहते हैं—इस दृश्य को देखने के लिए सूर्य भगवान् भी अपने रथ के थके हुए घोड़ों को रोक लेते हैं—इधर परिहार-राज और उधर धूम-ध्वज में घोर युद्ध मच रहा है।"

पत्र-व्यवहार के जो उद्धरण ऊपर दिये गए हैं उनसे स्पष्ट है कि सूर्यमल्ल के काव्य विशेषत: 'वीर सतसई' के दोहों और कुछ गीतों को प्रेरणा सन् १८५७ के ग़दर की घटनाओं से ही मिली थी। किन्तु जिस कृति के निर्माण में उन्होंने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय लगाया वह है 'वंश-भास्कर'। यह आठ जिल्दों और ४५०० पृष्ठों में है। इस ग्रंथ में हाड़ा चौहान वंश के प्राय: दो सौ नरेशों का वृत्तान्त, जीवन-चर्या, फ़ौजी क़ारनामों एवं अन्य कार्य-कलापों का वर्णन है। यद्यपि शैली की दृष्टि से इस ग्रंथ से सूर्यमल्ल की उग्र प्रतिभा के प्रमाण निरंतर मिलते हैं पर इसकी विषय-वस्तु परंपरागत ही है। 'वंश-भास्कर' न केवल हाड़ा ख़ाप के चौहानों की उपलब्धियों की कहानी है वल्कि यह उस वंश तथा उनके समय का इतिहास भी है।

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय साहित्य में साहित्य, काव्य और इतिहास का अविभाज्य सम्मिश्रण है। रामायण और महाभारत दोनों इस सम्मिश्रण के बड़े उदाहरण हैं। इस प्रकार के प्रयास में काव्य के रुचिर सौन्दर्य के माध्यम से यद्यपि इतिहास का सामान्य निर्वाह हो जाता है—किन्तु काव्य की भावात्मक प्रकृति के कारण इतिहास की यथातथ्यात्मकता को क्षति अवश्य पहुँचती है। राजस्थानी भाषा के कई अन्य ग्रंथों तथा 'वंश-भास्कर' के साथ यही हुआ है। इतिहास, काव्य तथा अन्य कई पुरातन कलाओं और विज्ञानों का सम्मिश्रण 'वंश-भास्कर' की विशेषता है। राजस्थान इतिहास के शोधकर्ताओं ने तथ्यों के सत्यापन के लिए और राजस्थान के इतिहास के अज्ञात स्थलों की पूर्ति के लिए भी 'वंश-भास्कर' का प्रचुर उपयोग किया है।

रामकरण आसोपा ने, जो 'वंश-भास्कर' के प्रथम और संभवतः अब तक के एकमात्र सम्पादक हैं, कृति की विषय-बहुलता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है :

"वंश-भास्कर की योजना महाभारत से बहुत मिलती-जुलती है। महाभारत के लेखन का प्रधान उद्देश्य पाण्डु-वंश की कहानी कहना ही था परन्तु इस कार्य को करने में कवि वेदव्यास ने उस समय के दरबारी जीवन और उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण भी कर दिया है। इन बातों का वर्णन करते हुए कवि ने धर्म, नीति, राजधर्म और दूसरे सामाजिक विषयों को भारी योगदान किया है। सूर्यमल्ल ने भी वही पद्धति अपनाई है। चौहानों का इतिहास 'वंश-भास्कर' का मुख्य कथ्य है, किन्तु इस कृति में प्राचीन और मध्य-कालीन इतिहास का चित्र है। और षट्शास्त्र, कामसूत्र, शालिहोत्र, आयुर्वेद, ज्योतिष और अन्य अनेक विषयों का भी विवेचन है। इस ग्रंथ के पठन से न केवल उत्कृष्ट काव्य के पठन का आनन्द प्राप्त होता है बल्कि इतिहास, विविध कलाओं और विज्ञान की जानकारी भी मिलती है। इससे पाठक के संस्कृत, प्राकृत, ब्रज-भाषा इत्यादि संबंधी ज्ञान की भी वृद्धि होती है और जिस तरह माघ के निमित्त कहा गया था उसी तरह सूर्यमल्ल के लिए भी कहा जा सकता है कि :

"नवसर्गे गते माघे नव शब्दो न विद्यते"

अध्याय ४

सूर्यमल्ल मिश्रण की साहित्यिक गरिमा

उन बहुसंख्यक गीतों के अतिरिक्त जिनका सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा सम-सामयिक, मध्यकालीन वीरों और महान् घटनाओं की प्रशस्तियों के रूप में सृजन हुआ, उनके द्वारा सात ग्रंथों का प्रणयन किया जाना प्रसिद्ध है (१) वंश-भास्कर (२) वीर-सतसई (३) बलवद्-विलास (४) रामरंजाट (५) छंद मयूख (६) धातु रूपावली और (७) सती रासो।

इनमें से अंतिम तीन या तो अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं अथवा अनुपलब्ध हैं। पहले चार ही ऐसे हैं कि जिन पर सूर्यमल्ल मिश्रण की महाकवि, गंभीर विद्वान् और महान् इतिहासकार के रूप में ख्याति आधारित है। 'बलवद्-विलास' का प्रणयन कवि ने अपने अभिन्न मित्र, भिनाय के राजा बलवन्तसिंह के प्रति स्नेह, साहचर्य और कृतज्ञता के भावों से प्रेरित होकर किया था। काव्य-कला और वर्णन-चातुर्य की दृष्टि से यह ग्रंथ भी उत्तम है, पर आलोचक-दृष्टि-सम्पन्न पाठक के लिए इसमें अधिक आकर्षण नहीं है। 'रामरंजाट' तो एक लघु कृति है और इसमें केवल १४५ छन्द हैं—लेकिन इस लघु कृति के विषय में भी मननीय बात यह है कि कवि ने इसे दस वर्ष की छोटी आयु में लिखा। किस आयु में यह पुस्तक लिखी गई, इस तथ्य पर सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है—कृति में किशोर कवि ने स्वयं लिख दिया है कि यह संवत् १८८२ में लिखी गई। असंदिग्ध साक्ष्य से यह सिद्ध हो चुका है कि सूर्यमल्ल का जन्म विक्रम संवत् १८७२ में हुआ। अतः विक्रम संवत् १८८२ में उनकी आयु निश्चित रूप से दस वर्ष रही होगी। कवि ऐसी छोटी आयु में 'रामरंजाट'-जैसा ग्रंथ लिख सका यह इस बात का प्रमाण है कि अपने आस-पास के वातावरण के सूक्ष्म अवलोकन और उसका उपयुक्त और सही शब्दों में वर्णन करने की अद्भुत क्षमता इनको बाल्यावस्था से ही प्राप्त थी। उस समय के दरबारी जीवन का वैभव-वर्णन इस पुस्तक का कथ्य है और इस कथ्य के विस्तार में उन्होंने दशहरा, तीज आदि त्योहारों और वर्षा ऋतु में बूंदी नगर के सौन्दर्य का सजीव वर्णन किया है। उन्होंने दशहरा, तीज आदि त्योहारों के माध्यम से

11605

तत्कालीन समाज-व्यवस्था के भी सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत किए हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और लोक-भाषा में प्रचलित विविध छंदों यथा दोहा, वैताल, पद्धरी, त्रिभंगी, भुजंगी, भुजंग-प्रयात आदि का उन्होंने प्रयोग किया है और प्राकृतिक दृश्यों और मानव-व्यवहारों का सूक्ष्म और हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है। जिस भाषा का उन्होंने अपने ग्रंथों में प्रयोग किया है वह राजपूताना भर के तत्सामयिक चारण कवियों की सर्व-स्वीकृत भाषा थी। उस सूक्ष्म वर्णन के कारण, जो कवि ने महाराव रामसिंह के विवाह में होने वाले लोकाचारों के विषय में किया है, 'रामरंजाट' समाज शास्त्रीय दृष्टि से मनोरंजक और ऐतिहासिक दृष्टि से सूचना-प्रद बन गया है। बूंदी से जोधपुर जाने वाली बारात जिस मार्ग से और जहाँ-जहाँ पड़ाव करती हुई गई उसका भी तथ्यात्मक वर्णन इस पुस्तक में है। वर-यात्रा में जो लोग शामिल हुए कवि ने उनके नाम मात्र ही नहीं गिनाए हैं बल्कि उनकी विशिष्टताओं का भी सांगोपांग वर्णन किया है :

'रामरंजाट' में से वर्षा ऋतु का एक वर्णन देखिए :

"अणभाव मेह चढ़ियो अमाव
घण वादल लूंबै घसण घोर
जलधार उड़ै छोला सजोर
मूसलाधार वरसंत मेह
भीजंत सरव सोहड़ अभंग, केसरयाँ कसूमल वहत रंग

अरड़ाट पवन झपटै अपार
लपटै तन वसतर नीर लार
घहरात मेघ गंभीर घोर अति मोर सोर कत ओक ओक
उण वार राम चढ़ियौ उदंड, वानैत वीर पौरस प्रचंड"

(मेघमाला इस तरह छा गई मानो आसमान में समा नहीं रही है। घने बादल झुककर घोर गर्जन करते हैं। जल की धारा अति वेग से प्रवाहित है। नर-नारियों के वस्त्र भीगकर केसरिया और कसूमल रंग बह रहा है। शोर करता हुआ पवन तीव्र वेग से झपटता है। भीगे हुए वस्त्र शरीर से लिपटते हैं। गंभीर घन-गर्जन से प्रेरित मोर जहाँ-तहाँ शोर करते हैं। प्रचंड पौरुष वाले धनुर्धारी वीर राम (रामसिंह) मानो युद्ध-यात्रा पर निकले हैं।)

इस कृति में दूसरे स्थल पर कवि ने शिकार के लिए जाते हुए महाराव रामसिंह के प्रिय अश्व 'मोर' की शक्ति और वेग का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया है :

"चहुआन चढयौ धज राज चवाँ
तुछ आसन नागर पान तवाँ

खुरतारन आग झरै सु खर, पख जानिक वीज सलाव परै
कटि जात वुरज्ज सु फेटन तै चिथ जात मतंग चपैटन तै
सजि घूमर, नाखत सारंग ज्यूं अति कूदत रथ्थ पतंगस ज्यूं
जगदीश को वाहन गरुण जिसौ, अति तेज तुरी हय मोर इसौ"

(चौहान अपने ऊँचे रण-तुरंग पर चढ़े हैं।

अश्व की पीठ पर बैठने का स्थान नागर-वेल के पत्ते की तरह कोमल और सुन्दर है। अश्व की खुड़तालों से आग झरती है।

घोड़े के पक्ष वर्षा में विद्युत्धारा की भाँति चमकते हैं। क़िलों की बुरजें उसकी टाप की फटकार से कट जाती हैं और उसकी चपेट से हाथियों के चिथड़े उड़ जाते हैं। सजा हुआ अश्व हिरन की-सी चंचलता से घूमर नृत्य करता है। ऐसा कूदता है मानो सूर्य के रथ का भागा हुआ घोड़ा है। 'मोर' घोड़ा भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ की भाँति वेगवान है।)

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि जिस आयु में अधिकतर बालक अपने खेल के हमजोलियों के साथ नटखटी करते रहते हैं उस आयु में सूर्यमल्ल की काव्य-प्रतिभा इतनी उजागर हो गई थी। केवल कल्पना और अनुभव मात्र से तो इस आयु में ऐसी शक्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं था, अतः यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि इस काव्य-शक्ति के मूल में कवि द्वारा संस्कृत और प्राकृत साहित्य का वह अध्ययन रहा होगा जो अध्यवसायी सूर्यमल्ल ने अपने पिता और अन्य गुरुओं के मार्ग-दर्शन में किया था। मात्र दस वर्ष के बालक द्वारा इतनी दक्षता, और इस दक्षता का इस खूबी से उपयोग इस बात का साक्ष्य है कि कवि की बुद्धि, मेधा और अभ्यास कितना अद्भुत था।

सूर्यमल्ल की कृतियों में सबसे विशाल 'वंशभ-स्कर' महाभारत की तरह पृथ्वी पर मानव के उद्भव की कहानी से अर्थात् दक्ष प्रजापति आदि की उत्पत्ति से आरंभ होता है। कवि ने अपने इस कार्य को इतना गंभीर और पवित्र माना है कि ग्रंथारम्भ के प्रायः २०० पृष्ठ तो उसने ब्रह्म, विविध देवताओं, महाकवियों, विद्वानों और गुरुओं की स्तुति में ही लगाए हैं। गुरुओं के प्रति उन्होंने बड़ी श्रद्धा और श्लाघा दिखाई है। यद्यपि ये अभिचार दैविक शक्तियों के प्रति ही किये गए हैं पर इनमें मानवता का भी व्यापक समन्वय है। एक स्थान पर उन्होंने ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों की भी स्तुति की है कि जो दुखियों और आर्त्त लोगों को संरक्षण प्रदान करते हैं। इन स्तुतिपरक अंशों में उन्होंने उन अन्यायों और अत्याचारों पर भी ध्यान दिया है कि जो उन दिनों असमर्थों और दीनहीन लोगों पर होते थे :

ये दारिद्र्यजितान् खलैरपकृतान् भूमीभृता दंडितान्
स्तैनैराकुलितान् रुजाऽप्यधिगतान् कर्णेजपैःकुत्थितान्
इत्याधान नवनीतनम्र हृदया वीक्ष्यैव तेभ्योऽमिता-
मार्ति स्वान्तर निङ्गितं विदधतेऽलंतान समस्तान नुमः

यह आश्चर्यजनक ही है कि जब दरबारी-काव्य में मात्र शृंगार का ही बोल-बाला था, सूर्यमल्ल ने संगीत और सौन्दर्य के प्रति अपने निजी आकर्षण के बाव-जूद, अपने काव्य को लौकिक प्रेम के दैहिक पक्षों के वर्णन में भी, नग्नता अथवा वीभत्सता की ओर नहीं झुकने दिया। समसामयिक काव्य-परंपरा के अनुसार राधा-कृष्ण की जुगल-जोड़ी के चरणों में उन्होंने भी श्रद्धा सुमन अर्पित्र किए पर उनके रास-लीला आदि के वर्णन पूर्णत: संयत और श्लील हैं।

जिन स्थलों पर सूर्यमल्ल का मन रमा है और जहाँ उनके वर्णन की शक्ति प्रखरता के उच्चतम स्तरों पर पहुँची है वे हैं 'शूरत्त्व और आत्म-बलिदान के कृत्य'। राजस्थान के इतिहास के अध्येता राजपूत-काल (मध्ययुग) की दो प्रथाओं से परिचित ही हैं। ये हैं 'केसरिया' और 'जौहर'। पहली प्रथा 'पुरुषों' से और दूसरी 'महिलाओं' से संबंध रखती है और ये दोनों प्रथाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। जब कोई राजपूत भूपति प्रबलतर शत्रु द्वारा घेर लिया जाता था और विजय की कोई आशा शेष नहीं रहती थी तो उसके लिए युद्ध से पीछे हटने अथवा आत्म-समर्पण का तो सवाल ही नहीं उठ सकता था। इस प्रकार घिरे हुए और विजय की ओर से निराश वीरों के लिए अन्त तक युद्ध-रत रहना ही एक-मात्र सम्मानित और परंपरागत मार्ग था। यह सर्वज्ञात है कि उन दिनों विजेता सेनाएँ पराजितों और उनकी स्त्रियों के साथ क्रूर और बर्बरतापूर्ण व्यवहार करती थीं। विजितों की स्त्रियों के साथ बलात्कार, धन की लूट और पूजा-ग्रहों का ध्वंस उस युग में विजेताओं का अधिकार माना जाता था। इस प्रकार की भीषण परिस्थिति उपस्थित होने पर महिलाएँ एकत्र होकर एक विशाल अग्निकुण्ड में कूदकर मृत्यु का वरण करती थीं और अपने पुरुष-वर्ग को स्त्रियों की सम्मान-रक्षा की चिन्ता से मुक्ति प्रदान करती थीं। यह 'साका' या 'जौहर' के नाम से प्रसिद्ध था। इसके पश्चात् सारा पुरुष-वर्ग केसरिया वस्त्र धारण करके रण-समुद्र में कूद पड़ता था—मृत्यु-पर्यन्त युद्ध करने के लिए—मृत्यु का ऐसा रोमांचकारी रूप राजस्थान के इतिहास, ग्राम गीत और काव्य में बहु-प्रशंसित हुआ है और 'केसरिया' नाम से विख्यात है। 'वंश-भास्कर' और 'वीर-सतसई' में इस लोम-हर्षक प्रथा का बड़ा हृदयग्राही वर्णन हुआ है :

"भाखिय सम वय भटन मरन हुव समय मनोमय
लहिहैं मृत दिव-लाभ अमृत रहिहै मंडोउर
वंसावद भुव विलसि धरहु अब पुत्र राज्य धर
वय जुब्वन सुभटन वरजि समवय वृद्ध सिपाह
करि इक्कत रक्खन कहय चिह्न मरन रन चाह
अजिर कुण्ड अक्खिय उनहु रक्खहु धुण्टन धुराइ
जिहि मरनो निज वस्त्र जुहि अकथित बोरहिं आइ

आपरा अजेय वीरां रो इसड़ो अभीष्ट जाणि कुंकुम रो कुण्ड धुलाइ हाडाँ रो अधीस हाल वासठ वर्ष रा वय में पहली आपरा वस्त्रां रै वोल दिवाइ उर्वसी रो वींद वणियो''—

(वह अपने समवयस्क वीरों से वोला, ''मरने के लिए आज मन-चाहा अवसर उपस्थित हुआ है। जो मारे जाएँगे उनको स्वर्ग की प्राप्ति होगी, जो जीते रहेंगे उन्हें 'मंडोर' का निवास प्राप्त होगा। धरती का खूब उपभोग कर लिया अब पुत्र पर राज्य-भार छोड़ना है। युवावस्था वाले सैनिकों को उसने युद्ध से विरत रखने का प्रयत्न किया। वृद्ध सैनिकों को एकत्र किया और कहा मरण का चिह्न धारण करो—आँगन में केसरिया रंग का कुण्ड भराया—जिसको मरण की चाह हो वह स्वतंत्र इच्छा से अपने वस्त्र इसमें रंग ले। अपने अजेय वीरों का ऐसा अभीष्ट जान कुंकुम का कुण्ड भराकर हाडों का अधीश वासठ वर्ष की वय में पहले अपने वस्त्रों को रंगकर उर्वशी का दूल्हा वना।'')

एक-दूसरे अवसर पर कवि ने शत्रुशाल की सेना के युद्ध-प्रयाण का यों वर्णन किया है :

> ''सतो हालियो आगरे चक्र सज्जै, वजे वंव भेरी मुरैत्रंव वज्जै
> छलै मेह ज्यों खेह आकास छाई दियै चंचला सेल धारा दिखाई
> तुली ढाल रूड़ी धुली काल ओंपां अली जोट जूड़ी हली ज्वाल तोंपा
> उठावे करांपोगरा दे उछाला किनां लागणां राग पै नाग काला
> अराना हसे डूगरां रैण आंटे छदीजें करां सीकरां गैण छांटे''

(यो शत्रुशाल सेना सजाकर आगे वढ़ा, साथ में रण-वाद्य नगारे भेरी आदि वजते हैं—आकाश में धूल मेघों की तरह छाई हुई है जिसमें भालों की चमक विजलियों-जैसी कौंधती है—ढालें कालचिह्नों-जैसी तुली हुई हैं, ज्वालामयी तोपें, तगड़े वैलों की जोड़ियों द्वारा खींची जा रही हैं। रण-गज जव अपनी सूँडों को ऊपर उछालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि काले नाग उछाले लेते हैं। मार्ग में आने वाले पर्वतों को वे धूल में मिला देते हैं और सूँडों से जो फुहार उठाते हैं उसके छींटे गगन तक पहुँचते हैं।)

यह भी सत्य है कि 'वंश-भास्कर' में मुख्यतः प्राचीन और मध्यकालीन काव्य-परंपरा का निर्वाह ही हुआ है। कवि की महत्त्वाकांक्षा 'महाभारत' के समकक्ष ग्रंथ प्रस्तुत करने की थी। यही कारण है कि ग्रंथ में परंपरा का निर्वाह इस प्रचुरता से हुआ है। किन्तु ईसा की १९वीं सदी के जिस अस्तकाल में कवि रहा और जिसमें उसने यह रचना की उसका पर्याप्त प्रतिनिधित्व इसमें नहीं हुआ है। युग का यह प्रतिनिधित्व 'वीर सतसई' में हुआ है। यह कृति आकार में तो अपेक्षाकृत छोटी है किन्तु काव्य-कौशल और ओज इसमें बहुत है। 'वीर सतसई' का

प्रत्येक दोहा तराशे हुए हीरे की भाँति सुन्दर है।

इस कृति में परंपरागत वीर-भावना और स्वतंत्रता के प्रति समसामयिक आवेग का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। इसका रचना-काल आज़ादी की पहली लड़ाई के पहले और उसके दौरान का ही है अतः इसमें स्वतंत्रता-संघर्ष के प्रति कवि की भावना के सूक्ष्म संकेत बराबर मिलते हैं। युद्ध वीरों के प्रति कवि का यह आह्वान भी इसमें पाया जाता है कि देश की आज़ादी के लिए लड़ने वाली ताकतों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर दृढ़ संकल्प के साथ संघर्ष करने का यह उपयुक्त समय है। यह सही है कि कवि ने विद्रोह भड़काने के लिए साफ शब्दों में कुछ नहीं कहा है जैसा कि राजनीतिज्ञ करते हैं—तथापि इतिहास के रूपक में उन्होंने ऐसी भावात्मक अभ्यर्थना की है कि जो बलिदानी वीरों के हृदयों तक तो पहुँच जाए पर ऊपर से ज़रा भी आपत्तिजनक न प्रतीत होती हो। कवि ने स्वतंत्रता के इस संदेश को रहस्यमयी भाषा में व्यक्त किया, इसका कारण यह नहीं है कि स्पष्टोक्ति से उन्हें डर लगता था बल्कि उनकी संपूर्ण विचार-सरणि की यह मूल-प्रकृति है। वर्तमान में किसी भी घटना-क्रम को परंपरा और इतिहास के संदर्भ में देखना ही कवि का स्वभाव है। परंपरा और इतिहास की दृष्टि से ही वे जीवन का अन्वेषण करते हैं। परंपरा के दर्पण में वर्तमान को देखने की यह प्रवृत्ति 'वीर सतसई' के आरंभ से ही स्पष्ट लक्षित है :

"लाऊँ पै सिर लाज हूँ सदा कहाऊँ दास
गण है गाऊँ तूझ गुण, पाऊँ वीर प्रकास"

(जब मैं अपना शीश तुम्हारे सामने झुकाता हूँ तो मुझे इस बात की लाज भी लगती है कि मैं 'दास' कहलाता हूँ।

अतः मैं गण होकर (गणनायक का गण) तुम्हारे गुण गाता हूँ। मुझे वीर-रस का प्रकाश प्राप्त हो।)

यह उक्ति शत्रु पर विजय पाने के लिए वैदिक ऋषि द्वारा देवराज इन्द्र के प्रति निवेदित स्तवन की तरह प्रतीत होती है।

'वीर सतसई' के प्रारंभिक दोहों में सन् १८५७ (विक्रम संवत् १९१४) की घटनाओं के संदर्भ और भी अधिक स्पष्ट हैं :

"वीकमवरँसा वीतियो, गण चौचंदगुणीस
विसहर तिय गुरु जेठ वदि समय पलट्टी सीस
इकडंकी गिण एकरी भूले कुल सा भाव
सूरां आलस ऐस में अकज गुमाई आव
इण बेला रजपूत वै राजस गुण रंजाट
सुमिरण लग्गा वीर सब बीरां रो कुल वाट"

(विक्रम संवत् का उन्नीस सौ चौदहवाँ वर्ष व्यतीत होने पर ज्येष्ठ कृष्ण पंचमी गुरुवार को समय ने पहला पलटा खाया। यह समय ऐसा था कि जब किसी एक का ही आधिपत्य मानकर शूर-वीर अपने कुल-स्वभाव को भूल गए थे और आलस्य एवं भोग में अपनी आयु व्यर्थ खो रहे थे।

ऐसे प्रमादकाल में भी वे सब राजपूत जो रजोगुण में अनुरक्त थे, वीरों के परंपरागत कुल-मार्ग का अनुसरण करने लगे)।

कवि उन लोगों के प्रति भी चेतावनी के शब्द कहना नहीं भूला है कि जो इन परिस्थितियों में भी कर्तव्य की अवहेलना करने और निजी सुरक्षा को ही सब-कुछ समझने के फेर में हो :

"रखै पधारौ रावताँ नमक धणी रो नाँख
जम री पड़सी पास जब ऊघड़ सी तब आँख
अठै सुजस प्रभुता उठै अवसर मरियाँ आय
मरणौ घर रै माझियाँ जम नरँका ले जाय"

(योद्धाओ ! इस समय तो नमक-हरामी करके युद्ध-क्षेत्र से भाग जाओगे, पर जब इस नमक-हरामी के लिए यमलोक में यम की मार पड़ेगी तब तुम्हारी आँखें उघड़ेंगी (होश आएगा)।

रणक्षेत्र में मृत्यु का वरण करने वालों को इस लोक में सुयश और उस लोक में प्रभुत्व प्राप्त होता है और जो घर में पड़े मर जाते हैं उन्हें यमराज नरक में कोड़े लगाते हैं)।

ऊपर जो दो दोहे उद्धृत किए गए हैं वे कुरुक्षेत्र के रण में अर्जुन के प्रति भगवान् कृष्ण द्वारा किए हुए उद्‌बोधन की प्रतिध्वनि प्रतीत होते हैं।

योद्धा, सैनिक और वीर को सूर्यमल्ल ने सर्वोच्च प्रधानता दी है। उनके प्रति कहे हुए दोहों से सतसई भरी पड़ी है। कुछ उद्धरण दिए जाते हैं :

"डाकी ठाकर रो रिजक ताखाँ रो विख एक
गहल मुवां ही ऊतरै सुणिया सूर अनेक
दमंगल विच अपचौ दियण वीर धणीरो धान
जीवन धण बाल्हां जिका छोड़ो ज़हर समान
भड घोड़ा महंगा थिया एकण झाट उडंत
भड घोड़ा रां भामणा जेथ जुडीजे कंत"

(पराक्रमी ठाकुर द्वारा दी हुई जीविका और तक्षक का विष एक ही समान प्रभावी है।

जिस प्रकार तक्षक का विष मरने पर ही उतरता है उसी प्रकार इस ठाकुर

की दी हुई जीविका को भी मरकर चुकाना पड़ता है।

वीर मालिक का अन्न युद्ध में ही पच सकता है—बिना युद्ध के अजीर्ण पैदा करता है अतः जिसको जीवन और धन प्यारे लगते हों उसे ऐसे अन्न को ज़हर समझकर छोड़ देना चाहिए।

एक ही झपट होते ही इतने योद्धा और घोड़े मारे गए कि योद्धा और घोड़े महँगे हो गए। जहाँ मेरे पति जा भिड़ते हैं वहाँ योद्धाओं और घोड़ों की कदर बढ़ जाती है)।

योद्धा-वर्ग के सुषुप्त शौर्य को जगाने के लिए सूर्यमल्ल ने जो शंखनाद किया किया है उसके साथ मातृ-शक्ति के प्रति भी उन्होंने काव्य-सुमन अर्पित किए हैं—उस मातृ-शक्ति के प्रति, जो वीर प्रसविनी है और ऐसी संतान को जन्म देती है जिसका मन युद्ध के आह्वान का संपूर्ण हृदय से स्वागत करे। सूर्यमल्ल के काव्य का यह पक्ष अपने पूर्व-कवियों और सम-सामयिकों दोनों से अधिक विकसित है क्योंकि अन्य किसी ने अपने रक्त की होली खेलने वाले युद्ध-वीरों की माताओं की ऐसी प्रशस्ति नहीं की है। वे कहते हैं :

"हूँ वलिहारी राणियाँ, थाल बजाणै दीह
वीर जमी राजे जणै सांकल हीटा सीह
इला न देणी आपणी, हालरिये, हुलराय
पूत सिखावै पालणै मरण वडाई माय
पाल्यो हेली पूत नूं सोमल थण लिपटाय
अचरज अतरै जीवियो क्यों न मरे अव जाय

(मैं उन रानियों के थाल वजाये जाने वाले दिवस अर्थात् 'पुत्र-जन्मोत्सव' पर वलिहारी हूँ जो शृंखलाओं को तोड़ फेंकने वाले सिंहों के समान वीरों को जन्म देती हैं।

माता पुत्र को पलने में झुलाते हुए लोरी गाती है :

'हे पुत्र ! अपनी भूमि पर दूसरे का अधिकार न होने देना चाहे प्राण दे देना' यों लोरी में ही माता पुत्र को मरण का महत्त्व सिखाती है :

(हे सखी ! मैंने तो अपने स्तनों पर संखिया (एक विष) लपेटकर उस ज्वलंत दूध से इसका पालन किया था—अब यह रणभूमि के आह्वान की कैसे उपेक्षा कर रहा है—रणांगण में जाकर प्राणों की वाजी क्यों नहीं लगाता)।

अपनी धरती को आततायियों के हाथ से बचाने हेतु जीवन के वलिदान के लिए माता की ओर से पुत्रों के प्रति किए जाने वाले उत्तेजक और प्रेरक आह्वान को कवि ने वहुत से पद्यों में स्वर प्रदान किया है :

पूत महा दुःख पालियो वय खोवण थण पाय
एम न जाण्यौ आवही जामण दूध लजाय
भोला की डर भागियो अंत न पहुड़े एण
बीजी दीठाँ कुल वहू नीचा करसी नैण
भोला जाणौ भूलियां बरसां आठां वाल
एथ घराणै सीहणी कंवर जणै सो काल

(अपनी पत्नी का प्रियतम मेरा यह पुत्र रण में क्यों न मरे मैंने इसको अपना स्तन पान कराया है अतः रण से पीठ दिखाना इसके लिए ज़हर के समान है।

हे पुत्र ! अपने कुल की रीति को भूले मत मैंने तुझे विष-सा ज्वलंत अपने स्तनों का दूध पिलाया है--युद्ध प्रारंभ हो चुका है—अब मरने में देर क्यों ?)

यह वाणी महाभारत के उद्योग-पर्व की वीर माता विदुला का स्मरण कराती है, जिसने रणक्षेत्र से भागकर आए हुए अपने पुत्र से कहा था :

"उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शैष्वैवं पराजितः
अमित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धु शोकदः
निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम्
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम्"

वीर माता के विषय में सूर्यमल्ल की यह संकल्पना है। वीर वधू की संकल्पना को भी सूर्यमल्ल ने अन्तःकरण की गहराई से श्रद्धा और सम्मान की काव्यांजलि समर्पित की है।

रण-प्रयाण को तत्पर वीर-योद्धा की वधू उससे यों अनुरोध करती है :

"कंत लखीजे दोहि कुल न थी फिरंती छाँह
मुडियां मिलसी गीदवो वले न धणरी बाँह
विण नूतै घण पाहुणा हेली ढलिया आय
जाणै पीव परूसणौ हेक न भूखो जाय
हथलेवे ही मूठ किण हाथ बिलग्गा माय
लाखां बाता हेकलो चूड़ौ मो न लजाय"

(हे पति ! अपने दोनों कुलों पर दृष्टि रखना न कि केवल इस जीवन पर कि जो ढलती छाया है। यदि आप युद्ध से विलग होकर आओगे तो सिर के नीचे रखने को तकिया भले ही मिल जाय पर पत्नी की बाँह पर सिर रखकर शयन करने का सुख प्राप्त नहीं होगा।

हे सखी ! आज हमारे घर बिना न्यौते ही बहुत से पाहुणे आ गए हैं--अर्थात्

अचानक ही वहुसंख्यक शत्रु-दल ने आक्रमण किया है पर मेरा पति चतुर परोसने वाला है उनमें से किसी को भूखा नहीं जाने देगा—अर्थात् उनकी युद्ध-लिप्सा को पूरी तरह शांत कर देगा।

हे माँ ! पाणिग्रहण के समय ही जब मेरा हाथ पति के तलवार की मूठ थामने से कड़े पड़े हुए हाथ से लगा तो मैंने समझ लिया कि यह मेरा पति लाखों शत्रुओं से मुकाबला पड़ने पर भी मेरे चूड़े (सौभाग्य-चिह्न) को लज्जित नहीं करेगा)।

सैनिक की मानिनी वीर-वधू आगे कहती है :

"देख सहेली मो धणी अजको वाग उठाय
मद प्याला जिम एकलो फौजा पीवत जाय
गोठ गया सब गेह रा वणी अचाणक काय
सींहण जाई सींहणी लीधी तेग उठाय
भाभी हूँ डौढ़ी खड़ी लीधा खेटक रूक
थे मनुहारौ पाहुणां मेड़ी झाल वंदूक
घोड़ा चढ़णौ सीखियो भाभी किसड़े काम
वंव सुणीजै पार को लीजै हाथ लगाम
भाभी देवर एकलो सोचीजे न लंगार
मूझ भरोसो नाह रो फौजाँ ढाहण हार"

(हे सखी ! देख मेरा उद्धत पति घोड़े की वाग उठाकर अकेला ही शत्रु सेनाओं का इस तरह संहार कर रहा है कि जैसे कोई मद्यप, मद के प्याले पीता जाता हो।

सारे घर वाले प्रीति-भोज में गए हैं और अचानक ही कैसी परिस्थिति आ गई है अर्थात् शत्रुओं ने घर घेर लिया है।

यह देखकर वीर माता (सिंहनी) की वीर पुत्री (सिंहनी) ने युद्ध के लिए हाथ में तलवार धारण कर ली है।

हे भाभी ! मैं ढाल-तलवार लिये ड्योढ़ी में खड़ी हूँ तुम हाथ में वंदूक लेकर और ऊपर के कमरे में खड़ी होकर मेहमानों की मनुहार करो (उनका मुकावला करो) हे भाभी ! तुमने घुड़सवारी किस दिन के लिए सीखी थी। शत्रु के रण वाद्य सुनाई पड़ रहे हैं, लगाम हाथ में लो (घोड़े पर वैठकर रण-क्षेत्र में डट जाओ) हे भाभी ! (जिठानी) जरा भी यह न सोचो कि तुम्हारा देवर अकेला है। मुझे अपने पति का भरोसा है। वह अकेला ही फौजों को गिराने की शक्ति रखता है।)

जान वचाकर रण से भागने वालों के लिए कवि ने तीक्ष्ण उपहास और कटाक्ष से भरी हुई पंक्तियाँ कही हैं :

"कंत घरै किम आविया तेगां रो घण त्रास
लहंगे मूझ लुकीजिए वैरी रो न विसास
यो गहणो यो वेस अव, कीजै धारण कंत
हूँ जोगण किण कामरी, चूडा खरच मिटंत
भोला की डर भागियो अंत न पहुड़ै ऐण
वीजाँ दीठाँ कुल वहू नीचा करसी नैण"

(हे पति ! क्या आप तेगों (भालों) की मार के भय से रणभूमि से भाग आए हैं —यदि ऐसा है तो वैरी का विश्वास नहीं। कहीं घर में भी आपको न आ पकड़े— आप मेरे लहंगे में छिप जाइए)।

हे पति ! ये आभूषण और यह परिधान अव आप धारण कीजिए—आपके कायर की तरह रणक्षेत्र से भाग आने से अव मैं तो जोगिन की भाँति हो गई हूँ। अव मुझे सौभाग्य-चिह्न धारण करना भी उचित नहीं है।

हे मूर्ख ! तू रणक्षेत्र से कैसे भाग आया ? क्या मृत्यु की पहुँच घर तक नहीं है? तेरी इस कायरता के कारण तेरी वीर-पत्नी को दूसरों के सामने लज्जित होना पड़ेगा।)

राजपूत-योद्धा के लिए वीर माता और वीर पत्नी के बाद उसकी स्नेह-शृंखला में आता है उसका रणभूमि का साथी 'घोड़ा'। प्रत्येक चारण कवि ने योद्धा के इस रण-सहचर के प्रति स्नेह और कृतज्ञता के सुमन अर्पित किए हैं— महाभारत में वेदव्यास ने अर्जुन के रथ के घोड़ों के प्रति पार्थ सारथी कृष्ण के स्नेह का सुन्दर वर्णन किया है। महाराणा प्रताप और उनके वफ़ादार घोड़े चेतक के वीच का पारस्परिक स्नेह, इतिहास-प्रसिद्ध है। युद्ध प्रक्रिया के यंत्रीकरण-युग से पहले विश्व भर में अश्व, योद्धा का अपरिहार्य साथी समझा जाता था। अश्व-प्रेम की यह परंपरा राजस्थान क्षेत्र में विशेष प्रगाढ़ है—यहाँ विजयदशमी के पवित्र दिवस पर भगवती दुर्गा, अश्व और शस्त्र की पूजा आवश्यक अनुष्ठान के रूप में प्रचलित है। राजपूत इतिहास, काव्य, चित्रकला और लोक-कथाएँ रण-तुरंग की प्रशंसा से भरी हुई है और 'अश्व' की वफ़ादारी और वहादुरी की कथाएँ प्रचुरता से लोक विख्यात हैं। यह बात राजस्थान में सर्वज्ञात है कि सैनिक और उसका परिवार चाहे रूखा-सूखा खाकर गुजर कर ले पर उसके 'घोड़े' को ग़रीवी के बावजूद भी वल-वर्द्धक द्रव्य खिलाए जाते हैं। किसी सैनिक-पत्नी ने उस समय संभवतः घर के बालकों की अभाव-ग्रस्तता और 'घोड़े' के साथ इस उदार व्यवहार को देखकर कुछ आपत्ति की तो सैनिक पति ने 'घोड़े' के प्रति अपने स्नेहोद्गार और कृतज्ञता को इन शब्दों में व्यक्त किया :

"अचगर मत कर कामणी, घोड़ा घी देताँह
आखो मोल चुकावसी जूझै रणखेताँह"

हे कामिनी ! घोड़े को घी देने में रुकावट मत कर यह घोड़ा रण-क्षेत्र में जब (अपने स्वामी के साथ) जूझेगा तब इस घी का सारा मोल चुका देगा।

सूर्यमल्ल ने भी राजपूत-योद्धा के इस रण-सहचर की जी खोलकर प्रशस्ति की है। चारण-कवियों ने इन घोड़ों के प्रायः तीन रंग बताए हैं—'लीला' 'धवल' 'कुम्मैत'। यह परंपरा इतनी स्थापित है कि घोड़े की संज्ञा का प्रयोग किए बिना ही 'लीला' 'धवल' या 'कुम्मैत' मात्र कहने से 'रण-तुरंग' का ही अर्थ निकाला जाता है—सैनिक के इस रण-सहचर के विषय में सूर्यमल्ल लिखते हैं :

"कर पुचकारै धण कहै जाण धणी री जैत
नीराजण बाँधावियो हूँ वलिहार कुमैत
जंग नगारा जाण रव आण धगाँरा अंग
तंग लियंता ताँडियो तोनै रंग तुरंग
घोडाँ घर ढालाँ पटल भाला थंभ बणाय
जे ठाकुर भोगे जंमी और किसाँ अपणाय
लीला वलिहारी थई हण टाँपा खल झुण्ड
पहली पड़ियो टूक है खड़े धणी रे रुण्ड
नीला मों पहली पडे कीध उतावल काय
वाल्हा कवँला पालियो पड़तौ मूझ पुगाय"

(पति की विजय से सूचित होकर पत्नी ने बढ़कर घोड़े की आरती उतारी और कहा कि हे कुम्मैत ! (घोड़े का रंग-आश्रित नाम) मैं तुझ पर बलिहारी हूँ।

युद्ध के नगारों की आवाज़ सुनते ही शरीर में वीर-स्फूर्ति लाकर तंग खींचते-खींचते ही तू नाचने लग गया, हे तुरंग ! तुझे शाबाश है।

जो सरदार ढालों की छत और भालों के खंभों से घोड़ों पर ही घर बनाकर पृथ्वी का उपभोग करते हैं उनसे उसे कौन छीन सकता है ?

हे नीले अश्व ! तुझ पर बलिहारी हूँ कि स्वामी का रुण्ड खड़ा था तभी शत्रुओं के झुण्ड को अपनी टापों से मारकर तू टुकड़े-टुकड़े होकर स्वामी से पहले ही गिर पड़ा।

हे नीले (प्रिय अश्व) ! मैंने तुझे बड़े प्रेम से ग्रास खिला-खिलाकर पाला था। मुझसे पहले ही रण-भूमि में काम आकर तूने इतनी उतावली क्यों की। मेरे रण-भूमि में मरने के बाद ही मरता।)

अपनी भूमि के प्रति गहन-प्रीति विश्व-भर में काव्य का प्रिय विषय रहा है। पूर्ववर्ती चारण-कवियों ने इस 'भूमि-प्रेम' का किंचित संकुचित अर्थ लगाया है—अर्थात् उस भूमि के प्रति प्रेम जो किसी व्यक्ति ने अपने भुज-बल से अर्जित की हो

अथवा पूर्वजों से उत्तराधिकार में पाई हो। सूर्यमल्ल ने इस अर्थ की गुरुता और विस्तार प्रदान किया। उनके काव्य में 'भूमि' का अर्थ शक्ति से अर्जित अथवा उत्तराधिकार में प्राप्त भूमि ही नहीं है बल्कि 'मातृ-भूमि' भी शामिल है कि जिसके प्रति मातृ-भूमि का पुत्र स्नेह और कृतज्ञता के अनगिनत बंधनों से बँधा हुआ है। धरती के पूत के लिए उसकी रक्षा में कोई भी बलिदान अदेय नहीं है। भारतवर्ष में सन् १८५७ की घटनाओं के संदर्भ में भूमि-प्रेम की परंपरागत विषय-वस्तु को नया अर्थ प्राप्त हो गया। सूर्यमल्ल का कवि-हृदय इस अर्थ-विस्तार पर मुग्ध हुआ और उसने मातृ-भूमि की स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व बलिदान के लिए देश-भक्तों का अपने सशक्त काव्य द्वारा मुखर आह्वान किया। शत्रुओं द्वारा आक्रान्ति से मातृ-भूमि की रक्षा में प्राणों का बलिदान करने वालों के प्रति कवि ने हृदयग्राही उद्‌गार व्यक्त किए हैं।

वे कहते हैं :

"काली नाहक की डरै खेती लाभ म खोय
धरती रा जेथी धणी हूँ कल तेथी होय
धीराँ धीराँ ठाकुराँ जमी न भागी जाय
धणियाँ पग लूंबी धरा अवखी ही घर आय
काँकड भैंबक चहकिया ऊठौ खुलियो कोट
सुणताँ नाहर आलसी सूतौ बदल करौट
धण आखै जागौ धणी हूँकल कलल हजार
बित नूता रा पाहुणा मिलण बुलावै बार"

(हे काली ! तू इस भयंकर युद्ध से भयभीत होकर पलायन मत कर। युद्ध की इस खेती की फ़सल को भरपूर काट, धरती का प्रभुत्व जिस युद्ध-तत्परता से रक्षित होता है उसी युद्ध का यह भीषण रव है।

हे ठाकुरो ! धीरज से काम लो, धरती कहीं भागी नहीं जाती। यह धरती तो वीर स्वामियों के पाँवों से बँधी हुई है इसको कठिनाई से ही प्राप्त किया जाता है।

सीमा पर रण-वाद्य बजने लगे हैं, हे स्वामी ! उठो, कोट के द्वार खुल गए हैं। यह सुनकर भी नाहर (सिंह) की भाँति लापरवाह वह वीर करवट बदलकर सो गया है।

वीर पत्नी कहती है, धणी ! जागो बाहर प्रचुर कोलाहल हो रहा है बिना निमंत्रण के आए हुए मेहमान (शत्रु) द्वार पर तुम्हें मिलने (युद्ध) के लिए बुला रहे हैं।)

तत्सामयिक धर्म, नीति, आचार और प्रथाओं के ज्ञान के लिए 'वंश-भास्कर'

एक 'विश्व कोष'-जैसा है। न केवल इतिहासकार के लिए बल्कि समाजशास्त्री के लिए भी यह संदर्भ ग्रंथ और ज्ञान का भंडार है। जिस काल-खंड का इसमें वर्णन है उससे संबंधित प्रथाओं और उनसे सम्बद्ध औपचारिकताओं का इसमें सविस्तार वर्णन है। उस समय के समाज में प्रचलित मैदानी और गृह-क्रीड़ाओं का तथा मनोरंजन की विविध प्रणालियों का भी इसमें वर्णन है। उस समय के सामाजिक और आर्थिक वातावरण का चित्रण भी इस काव्य में हुआ है।

इन प्रथाओं में से एक जिसका विस्तार से वर्णन हुआ है 'सती-प्रथा' है। मूलतः यह प्रथा योद्धा-वर्ग में ही थी पर कालान्तर में यह समाज के दूसरे वर्गों में भी प्रचलित हो गई। बहुत पुरानी प्रथा तो यह नहीं है क्योंकि रामायण, महाभारत या इनके पूर्ववर्ती मुख्य ग्रंथों में इसका वर्णन नहीं है। पुरातन संस्कृत युग में संभवतः ऐसी प्रथा अनावश्यक भी थी क्योंकि उस समय की विजयी सेनाएँ भी विजितों की स्त्रियों को पूर्ण सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान करने में गौरव मानती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि विदेशियों के आक्रमण आरंभ होने के बाद परिस्थितियाँ बदलीं। विजितों की स्त्री सम्पत्ति आदि के साथ किए जाने वाले बरताव के संबंध में उनके प्रतिमान नितान्त भिन्न थे। इन आक्रमणों से पूर्व कोई भी विजेता, पराजित अथवा मृत शत्रु की विधवा द्वारा दूसरा पति स्वीकार किए जाने की कल्पना नहीं कर सकता था, न किसी असुरक्षित स्त्री का उत्पीड़न करने की ही सोच सकता था। मध्य युग में पराजित शत्रुओं की स्त्रियों के साथ बर्बर व्यवहार एक प्रचलित आम बात हो गई। इस परिस्थिति ने भारतीय योद्धा-वर्ग को किसी ऐसे मार्ग की बात सोचने पर विवश किया कि जिससे उनकी मृत्यु के बाद भी उनकी स्त्रियों का सम्मान सुरक्षित रहे। युद्ध-मृतकों के घर की स्त्रियों की सम्मान रक्षा के प्रति इसी चिन्ता और भय ने सती-प्रथा को जन्म दिया। समय बीतने पर यह आवश्यकता-जनित प्रथा कुल मर्यादा का चिह्न बन गई। इसका प्रारंभ संभवतः रण में मर जाने या मरने के लिए निकल पड़ने वाले पुरुष-वर्ग की महिलाओं द्वारा मृत्यु का स्वतः वरण करने से हुआ, पर धीरे-धीरे यह एक रूढ़ि बन गई और परिवार या वंश की मर्यादा-रक्षा के लिए स्त्रियों को बलात् भी सती होने के लिए विवश किया जाने लगा। जब समय बदल गया और सभ्यता के विकास से पुरानी बर्बरताएँ नष्ट हो गईं तब भी इस प्रथा को चलाए रखना क्रूरता ही कही जाएगी। अतः सूर्यमल्ल के सती-विषयक काव्य का मूल्यांकन आज की नहीं बल्कि उस युग की परिस्थितियों के संदर्भ में किया जाना चाहिए कि जिस युग के बारे में वे लिख रहे हैं। सूर्यमल्ल का लेखन उस समय में हुआ कि जब अंग्रेज़ी राज ने सती-प्रथा को समाप्त किया ही था और अपने लाखों देशवासियों की तरह सूर्यमल्ल भी इस प्रथा की दिव्यता में विश्वास रखते थे। सच तो यह है कि उस युग के ग़ैर-हिन्दू लेखक भी इस प्रथा में अन्तर्हित गरिमा, शौर्य और आत्म-

वलिदान से प्रभावित थे। उस समय के फारसी भाषा के एक कवि ने भी कुछ इस प्रकार कहा है :

"हिन्दू पत्नी के बराबर इश्क के मैदान में हमने कोई मरदाना नहीं देखा। बुझे हुए चिराग पर जलने वाला यही एक परवाना है।"

सूर्यमल्ल द्वारा सती प्रथा की प्रशंसा और उनके द्वारा इस प्रथा के प्रति की गई प्रशस्ति मे देश में उस समय व्यापक रूप से स्वीकृत लोक-भावना का ही दिग्दर्शन होता है। सती के प्रति उनके उद्‌गारों का अर्थान्वय ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाना ही उचित है—वे कहते हैं :

"समली और निसंक भख अंबक राह न जाह
पण धण रौ किम पेखही नयण विणण्ठानाह
काली करै वधावणौ सतियां आयो साथ
हथलेवे जुड़ियो जिकौ हमै न छूटे हाथ
सूतौ देवर सेज रण प्रसव अठी मो पूत
थें घर भाभी बांट थण पालौ उभय प्रसूत
साथण ढोल सुहावणौ देणौ मो सह दाह
उरसां खेती बीज धर रजवट उलटी राह
आज घरै सासू कहै हरख अचाणक काय
वहू वलैंबा हूलसै पूत मरैबा जाय
या घर खेती ऊजली रजपूतां कुल राह
चढ़णौ धव लारां चिता वढ़णौ धारा बाँह
सुत धारां रज-रज थियौ बहू वलैंबा जाय
लखिया डूंगर लाज रा सासू उर न समाय।"

(हे चील ! और दूसरे अंगों को तू भले ही निःसंकोच खा पर नेत्रों की तरफ़ न जा, क्योंकि यदि तू प्राणनाथ को नेत्र-विहीन कर देगी तो वे अपनी पत्नी का सती होने का प्रण-पालन कैसे देखेंगे।

युद्ध में लड़कर मर जाने वाले शूरमाओं के शवों के साथ जब उनकी स्त्रियाँ सती होने को आती हैं तब युद्ध की देवी काली यह कहकर उनकी प्रशस्ति करती है, 'जो हाथ हथलेवे में जुड़ चुके हैं, वे क्या छूटने वाले हैं ?'

हे भाभी ! तुम्हारा देवर तो रण-सेज पर सोया हुआ है (अर्थात् युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया है) इधर मुझे पुत्र का प्रसव हुआ है—हे भाभी ! आप अपना एक स्तन अपने बच्चे के लिए और दूसरा मेरे बच्चे के लिए रखकर दोनों का पालन करना (मैं तो अपने युद्ध-मृत पति के साथ चिता में प्रवेश करूँगी।)

हे सखी ! जब मैं अपने मृत पति के साथ सह-गमन करूँ तब सुहावना ढोल

वजवाना। राजपूतों की यही परंपरा है कि धरती पर वीज वोवे और स्वर्ग में काटे।

घर पर सास कह रही है कि आज यह अचानक हर्ष किस बात का हो रहा है—ओह ! मालूम हुआ कि आज पुत्रवधू सती होने के लिए हुलस रही है और पुत्र युद्ध में प्राण न्यौछावर करने के लिए जा रहा है।

सत्य-युद्ध ही राजपूतों की खेती है और यही उनके कुल की परंपरा है कि वेटी अपने मृत-पति के साथ चिता पर चढ़े और वेटा तलवार चलाकर युद्ध में कट मरे।

पुत्र तो रण में तलवार के घावों से टुकड़े-टुकड़े हो गया और वहू उसके साथ सती होने की तैयारी कर रही है। अपने कुल के यश के इन दोनों पर्वतों को देख-देखकर सास हर्ष से मतवाली हो रही है।)

सूर्यमल्ल के काव्य के इस प्रकार के गौरवपूर्ण और स्फूर्तिमय पद्यों के अनगिनत उदाहरण उनके ग्रंथों ('वंश भास्कर' और 'वीर सतसई') में भरे पड़े हैं। राजस्थान के विभिन्न भागों में होने वाले वीर पुरुषों की प्रशस्ति में उन्होंने जो गीत लिखे हैं वे भी काव्य की दृष्टि से वड़े उत्कृष्ट हैं। सूर्यमल्ल के काव्य के विषय में कठिनाई की बात यह है कि काव्य रचना तो उन्होंने इस संकल्प से प्रारंभ की कि सर्वसाधारण की समझ में आ सकने वाला काव्य लिखेंगे किंतु वे स्वयं इस संकल्प को नहीं निभा सके और उनकी रचना के उत्कृष्ट पद्य दुरूह और कठिन भाषा में लिखे गए। जिन लोगों ने उनकी कृतियों का अध्ययन करने के लिए यथेष्ट रुचि और धैर्य है, उनके लिए ये रचनाएँ भाव और शैली दोनों दृष्टियों से अनमोल काव्य-रत्नों के कोषागार हैं।

अध्याय ५

पुनर्विलोकन और प्रत्याशा

यह कहा जा चुका है कि सूर्यमल्ल का काव्य, अभिव्यक्ति की दृष्टि से दुरूह है। इसी कारण 'वीर सतसई' के अतिरिक्त उनकी अन्य काव्य-कृतियाँ अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाईं। यह निःसंदिग्ध रूप से नहीं कहा जा सकता कि स्वयं सूर्यमल्ल को इस दुरूहता का आभास था या नहीं। स्वतंत्रता के जिस संदेश को वे अपने काव्य में अभिव्यक्त करना चाहते थे वह भी सर्वसाधारण के प्रति उतना नहीं था, बल्कि क्षत्रिय वर्ग को प्रेरित करना ही उसका प्रधान लक्ष्य था। उस समय के राजपूत-वर्ग के लोग सैनिक अथवा प्रशासक के रूप में राजस्थान के किसी-न-किसी शासक से संबद्ध थे। और प्रायः इन सब शासकों के दरबारों में सूर्यमल्ल के काव्य को समझने और उसकी व्याख्या करने योग्य चारण-कवि मौजूद थे। अन्यत्र यह इंगित किया जा चुका है कि सूर्यमल्ल अपने काव्य को ऐसे लोगों तक जो उनकी प्रत्याशा की पूर्ति के लिए समर्थ न हों, ले भी नहीं जाना चाहते थे। 'वंश-भास्कर' और अन्य ग्रंथों में अनेकानेक स्थल यह सिद्ध करने वाले मौजूद हैं कि सूर्यमल्ल सहज, प्रसाद-युक्त और सरल भाषा में भी लिख सकते थे किंतु उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को इसलिए रहस्यपूर्ण बनाया कि वे संभवतः उसे उन्हीं हृदयों तक पहुँचाना चाहते थे कि जिनसे उसकी वांच्छित प्रतिध्वनि हो। 'वंश-भास्कर' कई दशाब्दियों तक इसलिए भी अप्रकाशित रहा कि इसका अर्थ-शोध कठिन है। और इसके लिए बड़े परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता है। जोधपुर के विख्यात विद्वान महामहोपाध्याय स्वर्गीय रामकरण आसोपा ने इसका सर्वप्रथम संपादन किया। इसी प्रकार स्वर्गीय वारहठ कृष्णसिंह भी इस ग्रंथ को आठ जिल्दों में संक्षिप्त व्याख्या के साथ प्रकाशित करने के लिए अतीव प्रशंसा के पात्र हैं। प्रोफेसर सुनीतिकुमार चटर्जी और राजकुमार रघुवीरसिंह-जैसे विद्वानों ने सूर्यमल्ल मिश्रण की प्रतिभा की मुखर प्रशस्ति की है और इसे इतिहास और काव्य दोनों क्षेत्रों में एक अनूठी उपलब्धि बताया है।

भारतीय कवियों में अपने काव्य का स्वतः मूल्यांकन करने की प्रथा नहीं है।

भक्ति-मार्ग के कवियों में जिनकी संख्या भारतीय साहित्य में सबसे अधिक है, अपने विषय में कुछ न कहने की परंपरा है। बाल्मीकि, व्यास, तुलसीदास, सूरदास, कबीर सबने इस परंपरा को निभाया है। इस विषय में चारण-कवियों की परंपरा कुछ भिन्न है। उन्होंने सामान्यतः सांसारिक विषयों पर लिखा है और लेखन द्वारा सांसारिक लाभों की उपलब्धि भी उनका लक्ष्य रहा है। इनमें से कुछ ने काव्यों में धन और मान कमाने की दृष्टि से अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा की है। सूर्यमल्ल भी चारण कवि थे पर लेखन में उनका उद्देश्य इतना संकुचित कभी नहीं रहा। उन्होंने एक महान उद्देश्य और उदात्त अभिप्राय से काव्य रचना की। यह अभिप्राय था, भारतीय योद्धा-वर्ग को देश-दर्प और कर्तव्य के प्रति सजग करना। इस काव्य-कर्तव्य के दौरान सूर्यमल्ल ने अपने काव्य के अभिप्राय का भी वर्णन किया है और उसका मूल्यांकन भी किया है। वे कहते हैं :

"सत्तसई दोहामयी, मीसण सूरज माल
जंपै भड़खाणी जठै, सुणै कायराँ साल
वैण सगाई वालियाँ पेखीजे रस पोस
वीर हुतासण बोल मैं दीसे हेक न दोस
इण वेला रजपूत तै राजस गुण रंजाट
सुमिरण लग्गा वीर सब वीराँ रौ कुल वाट"

मिश्रण सूर्यमल्ल की दोहामयी सतसई—वीरों का ग्रसन करने वाली (उनको मरने के लिए उद्यत करने वाली) है—कायरों के मन को यह खटकने वाली है। 'वैण-सगाई' का नियम पालन करने से सामान्यतः रस की पुष्टि होती है पर जिस वाणी में वीर-रस की यज्ञाग्नि जलती है उसमें सब दोष भस्म हो जाते हैं। ऐसे समय में (१८५७ के गदर के समय) वीर राजपूतों में राजसी तेज जगने लगा और वे सब वीरों के परंपरागत मार्ग का स्मरण करने लगे।)

सूर्यमल्ल-कृत 'वीर सतसई' के दोहों के दो प्रकार के प्रभाव हैं। एक ओर तो वे वीर को युद्ध की प्रेरणा देते हैं दूसरी ओर कायर को काँटे की तरह चुभते हैं :

"न थी रजोगुण ज्याँ नराँ वा पूरौ न उफाण
वे भी सुणतां ऊफणै पूरा वीर प्रमाण
जे दोही पख ऊजला जूझण पूरा जोध
सुणताँ वै भड़ सौगुणावीर प्रकासण वोध"

(जिन नरों में रजोगुण (वीरोचित चेतना) की कमी है और जिनमें उत्साह भरपूर नहीं है वे भी इस (वीर सतसई) का श्रवण करके पूर्ण वीर के समान उत्साह से भर उठेंगे। जिनमें वीरता वंशानुगत है और युद्ध में मर मिटने का

जिन्हें चाव है—ऐसे योद्धा जब इसे (वीर सतसई को) सुनेंगे तब उनका वीर दर्प शतगुण हो जाएगा।)

अपने काव्य के अभिप्राय और प्रभाव के विषय में सूर्यमल्ल ने जो कुछ लिखा है उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के अध्येता जानते हैं कि इस प्रकार की कृतियों के फलस्वरूप, राजपूताना के राज्यों में एक मौन-क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ था और कई स्थानों पर ब्रिटिश-दासता की बेड़ियों को तोड़ फेंकने के उपक्रम हुए थे। ठाकुर केसरीसिंह बारहठ और उनके पुत्र शहीद प्रताप जो स्वतंत्रता संघर्ष की बलिवेदी पर चढ़ गए थे उसी प्रेरणा के परिणाम थे कि जो सूर्यमल्ल और उनके समान-धर्मी कवियों ने जगाई।

देश के विभिन्न भागों में स्वतंत्रता की शक्तियाँ किस प्रकार संगठित हुईं इस विषय पर ज्यों-ज्यों अधिक शोध होगा और ज्यों-ज्यों सूर्यमल्ल-जैसे कवियों के योगदान की जानकारी बढ़ेगी, उनकी कृतियों का अध्ययन अधिक व्यापक होगा और उनके महत्त्व की अनुभूति गहनतर होती जाएगी।

• •

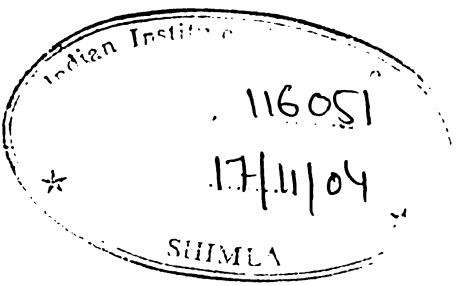
Indian Institute
116051
17.11.04
SHIMLA

इस माला में अब तक प्रकाशित हिन्दी पुस्तिकाएँ

लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ : हेम बरुआ / **बंकिमचन्द्र चटर्जी** : सुबोधचन्द्र सेनगुप्त / **बुद्धदेव बसु** : अलोकरंजन दासगुप्त / **चण्डीदास** : सुकुमार सेन / **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** : हिरण्मय बनर्जी/**जीवनानन्द दास** : चिदानन्द दासगुप्त/**काज़ी नज़रुल इस्लाम** : गोपाल हाल्दार / **महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर** : नारायण चौधुरी / **माणिक बन्द्योपाध्याय** : सरोजमोहन मित्र/**प्रमथ चौधुरी** : अरुणकुमार मुखोपाध्याय /**राजा राममोहन राय** : सौम्येन्द्रनाथ टैगोर / **ताराशंकर बन्द्योपाध्याय** : महाश्वेता देवी / **सरोजिनी नायडू** : पद्मिनी सेनगुप्त / **तरुदत्त** : पद्मिनी सेनगुप्त / **गोवर्धनराम** : रमणलाल जोशी / **मेघाणी** : वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी / **नानालाल** : उमेदभाई मणियार / **नर्मदाशंकर** : गुलाबदास ब्रोकर / **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** : मदन गोपाल / **बिहारी** : बच्चन सिंह / **देवकीनन्दन खत्री** : मधुरेश / **जयशंकर प्रसाद** : रमेशचन्द्र शाह / **महावीरप्रसाद द्विवेदी** : नन्दकिशोर नवल / **जायसी** : परमानन्द श्रीवास्तव/ **प्रेमचन्द** : प्रकाशचन्द्र गुप्त /**राहुल सांकृत्यायन** : प्रभाकर माचवे/**रैदास** : धर्मपाल मैनी / **श्यामसुन्दरदास** : सुधाकर पाण्डेय / **सुभद्रा कुमारी चौहान** : सुधा चौहान / **बी० एम० श्रीकंठय्य** : ए० एन० मूर्तिराव / **बसवेश्वर** : एच० थिप्पेरुद्रस्वामी/ **विद्यापति** : रमानाथ झा/**ए० आर० राजराज वर्मा** : के० एम० जॉर्ज/ **चन्दु मेनन** : टी० सी० शंकर मेनन / **कुमारन् आशान** : के० एम० जॉर्ज / **महाकवि उल्लूर** : सुकुमार अषिकोड / **वल्लत्तोल** : बी० हृदयकुमारी / **दत्तकवि** : अनुराधा पोत्दार/ **ज्ञानदेव** : पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे / **हरि नारायण आपटे** : रामचन्द्र भिकाजी जोशी / **केशवसुत** : प्रभाकर माचवे / **नामदेव** : माधव गोपाल देशमुख / **नरसिंह चिन्तामण केलकर** : रामचन्द्र माधव गोले / **श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर** : मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे / **फ़कीरमोहन सेनापति** : मायाधर मानसिंह / **राधानाथ राय** : गोपीनाथ महन्ती/**सरलादास** : कृष्णचन्द्र पाणिग्राही/**भाई वीर सिंह** : हरबंस सिंह/ **जाम्भोजी** : हीरालाल माहेश्वरी / **मुहतां नैणसी** : बृजमोहन जावलिया / **सूर्यमल्ल मिश्रण** : विष्णुदत्त शर्मा/**बाणभट्ट** : के० कृष्णमूर्ति/**भवभूति** : गो० के० भट/**जयदेव** : सुनीतिकुमार चटर्जी / **कल्हण** : सोमनाथ धर / **माघ कवि** : चण्डिकाप्रसाद शुक्ल/ **सचल सरमस्त** : कल्याण बू० आडवाणी / **शाह लतीफ़** : कल्याण बू० आडवाणी/ **भारती** : प्रेमा नन्दकुमार/**इलंगो अडिगल** : मु०वरदराजन/**कम्बन** : एस०महाराजन/ **माणिक्कवाचकर** : जी० वंमीकनाथन / **पोतन्ना** : दिवाकर्ल वेंकटावधानी / **वेदम वेंकटराय शास्त्री** : वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ) / **गुरजाड** : नार्ल वेंकटेश्वर राव/**चीरेशलिंगम्** : नार्ल वेंकटेश्वर राव / **वेमना** : नार्ल वेंकटेश्वर राव / **ग़ालिब** : मु० मुजीब ।